ओ३म्

अध्यात्म प्रकाशन

मानव की व्यक्तिगत-यात्रा

सरल, सरस एवं सुबोध व्याख्या

स्वामी दयानन्द सरस्वती
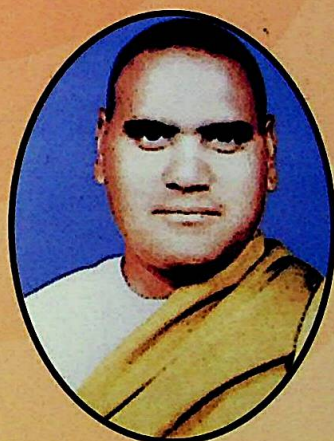
ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज
(पूर्व जन्म के शृंगी ऋषि)

सृष्टिकर्त्ता 'ईश्वर' की उपासना, पंच यज्ञों का यथार्थस्वरूप, पाक्षिक यज्ञ, वैदिक साहित्य परिचय एवं सामान्य जानकारी। पुरुषार्थ का अर्थ, आध्यात्मिक यज्ञ, वेद में यज्ञोपवीत का मन्त्र क्यों?

सृष्टि का उपभोक्ता 'आत्मा' आत्मा का स्वरूप एवं परिमाप, शरीर में प्रवृत्तियों का निर्माण तथा आत्मा के तीन शरीर, आत्मा का महत्व, गुण, कर्म, स्वभाव तथा शरीर त्यागते समय आत्मा की अगली योनि का निश्चय करना।

प्रकृति भोग्या–सृष्टि रचना, ऋत्, सत्य, ब्रह्माण्ड के लोक–लोकान्तरों की माला, सृष्टि चक्र, महाप्रलय की अवधि, षोडषी तथा चन्द्रमा षोडष कलाओं से युक्त, आत्मोन्नति संस्कार, श्रेष्ठ सन्तान को उत्पन्न करना आदि।

लेखक एवं संग्रहकर्त्ता : जयनारायण कौशिक "जिज्ञासु"

'ओ३म्' शब्द वाणी का पर्यायवाची है और वाणी से उच्चारण करने का स्वभाव है। चाहे मानव नास्तिक हो, किसी भी लोक–लोकान्तर में हो किन्तु 'ओ३म्' का उच्चारण उसकी वाणी से स्वाभाविक है। बच्चा गर्भस्थल से पृथक् होते ही 'ओ३म्' की वाणी ही बोलता है। यह 'ओ३म्' शब्द ही हमें ज्ञान देता है।

'ओ३म्' में अ+उ+म् सार्वभौम शब्द है। 'अ' = ब्रह्मवाची है। 'उ' = आत्मा (जीवात्मा) वाची है तथा 'म्' = प्रकृति का वाची है। ये प्रकृतिवादी ही 'म्' शब्द का उच्चारण करते हैं और संसार के भौतिक पदार्थों से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं।

—ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

ओ३म्

मानव की व्यक्तिगत यात्रा

सरल, सरस एवं सुबोध व्याख्या
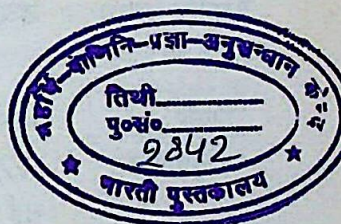
लेखक एवं संग्रह कर्त्ता

जयनारायण कौशिक 'जिज्ञासु'

संस्करण : विक्रम सम्वत्–2064 कार्तिक, कृष्ण, अमावस्या (दीपावली) दयानन्दाब्द 186 (9 नवम्बर, 2007)

लेखक एवं संग्रहकर्त्ता : जय नारायण कौशिक 'जिज्ञासु'

प्राप्ति स्थान : डब्ल्यू जैड–2बी/13, शादीपुर, नई दिल्ली–8

लेजर टाईपसैटिंग : मल्टी ग्राफिक्स
WZ-10, शादी खामपुर, चौपाल वाली गली,
नई दिल्ली–110008 मोबाइल : 98680-21968

मुद्रक : सनसाईन प्रिंटर
2151/ए–2, बलजीत नगर,
नई दिल्ली–110008

प्रथम वार : 1100 प्रतियां

मूल्य : 70 रूपये

दिनांक : 11.9.2007
समय : प्रातः 11.34
तिथि : कृष्ण बदी अमावस्या भाद्रपद

ओ३म्

दिव्य बोधात्मक सम्मति
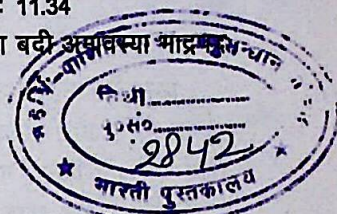
पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज (पूर्व श्रृंगी ऋषि) लाक्षागृह बसावा (बागपत) उत्तर प्रदेश के शिष्य श्री जय नारायण कौशिक "जिज्ञासु" ने दिव्य आभा से परिपूर्ण, शोधात्मक ग्रन्थ–"मानव की व्यक्तिगत–यात्रा" का लेखन अत्यन्त विद्वता के साथ पूर्ण किया है। मानव जीवन का उत्थान किन विधाओं से हो सकता है ऐसा सारगर्भित चिन्तन वास्तव में आपकी तपश्चर्या से ही सम्भव हुआ, मैंने दूरदृष्टि से ग्रन्थ का अवलोकन करने का प्रयास किया है, विषय एवं क्रम को देखकर मानो मन्त्रमुग्ध–सा हो गया। आपने "मानव की व्यक्तिगत–यात्रा" को सम्पूर्ण विश्व कल्याण का एकमात्र साधन बना दिया है, इस ग्रन्थ में ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के वैदिक सिद्धान्तों का विद्वतापूर्ण समन्वय ही आपकी अनुभवात्मक दृष्टि का द्योतक है। इस प्रकार के उत्तम ग्रन्थ का कर्मकाण्ड के क्षेत्र में प्रायः अभाव था। आपका प्रयास वास्तव में प्रशंसा योग्य है।

मैं आपके दीर्घजीवन के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। भविष्य में भी आप इसी प्रकार मानव समाज को कुछ दे सकें।

शुभाकांक्षी, आचार्य गुरुवचन शास्त्री, लाक्षागृह, बरनावा

पं. जय नारायण कौशिक "जिज्ञासु" द्वारा लिखित "मानव की व्यक्तिगत–यात्रा" सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त उपादेय है। उनका श्रम–साध्य कार्य सरल एवं भावोत्पादक है। इसमें यज्ञ–सम्बन्धी बहुत सारे पहलुओं पर विचार किया गया है जिसके कारण यह ग्रन्थ वैदिक ज्ञान के पथिकों के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा एक लम्बे भविष्य के लिए लोगों को लाभान्वित करेगा।

मैं इस ग्रन्थ के सफल लेखन पर आदरणीय पंडित श्री जय नारायण कौशिक जी को शतशः बधाई देता हूँ।

आचार्य वैद्य विक्रमदेव, गुरुकुल लाक्षागृह, बरनावा दिनांक 11.9.2007

तिथि : आश्विन शुक्ल 7, विक्रम संवत् 2064

ओ३म्

दिव्य बोधात्मक सम्मति

प्रभु की विलक्षण और अद्भुत सृष्टि का केन्द्रीय बिन्दु अगर कोई है तो वह मानव ही है और मानव में उसकी मानवता का निर्धारण और स्थापन कराने के लिए कर्म का विशेष महत्त्व है या यूँ कहा जा सकता है कि सृष्टि में मनुष्य के आने और विशेष कुछ करके जाने का उद्देश्य ही कर्म है तो अतिश्योक्ति न होगी। वैदिक परम्परा में कर्म के इसी महत्व को स्वीकार करके पंच महाकर्मों को नित्य करने का निर्देश दिया है। लेकिन समय के प्रवाह में इसमें भी कुछ भ्रान्तियाँ अपना स्थान बना लेती हैं।

युगों–युगों में कर्मकाण्ड की दुन्दुभिः बजाने वाली महान आत्मा ब्रह्मर्षि कृष्णदंत्तजी महाराज के प्रवचनों में कर्मकाण्ड की विशेष वृष्टि प्राप्त होती है। सौभाग्य से गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी के शिष्य श्री जय नारायण कौशिक जी ने उनके प्रवचनों का विहंगम अवलोकन करके कर्मकाण्ड के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कर्मकाण्ड की प्रचलित वैदिक पद्धति को प्रस्तुत किया है।

निश्चित ही यह पुस्तक जहाँ कर्मकाण्ड के महत्व का विशेष प्रतिपाद करेगी वहीं कर्मकाण्ड में स्थापना का अवसर भी हम सभी को प्रदान करेगी।

डा. कृष्णावतार, सम्पादक : वैदिक अनुसंधान समिति
403/1, डी–6, सैक्टर–6, रोहिणी, दिल्ली–85

ओ३म्

दिव्य बोधात्मक सम्मति

आदरणीय श्री जय नारायण कौशिक जी ने अपने गहन स्वाध्याय और सामाजिक उत्थान के लोकोपकारी चिन्तन के परिणामस्वरूप मानव जाति के उत्थान के लिए, धार्मिक भावनाओं की वृद्धि के सार्थक प्रयत्न के द्वारा जीवन के सुख–शान्तिमय स्वरूप के लिए 'मानव की व्यक्तिगत–यात्रा' नामक पुस्तक का संकलन कर मानव जाति का बड़ा भारी उपकार किया है, इस पुस्तक के माध्यम से लोगों में धार्मिक भावनाओं एवं कर्मकाण्ड के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होगी। परिवार, समाज और राष्ट्र का वातावरण परस्पर के उत्तम व्यवहार से सबके लिए सुखप्रद बनेगा। इस तरह की उत्तम पुस्तक का कर्मकाण्ड के क्षेत्र में अभाव था, आपका यह कार्य सर्वथा प्रशंसा के योग्य है। इसके लिए आवश्यकता है इस पुस्तक के अधिक प्रचार–प्रसार की। इस प्रशंसनीय कार्य के लिए श्री कौशिक जी बधाई के पात्र हैं।

डा. ऋषिपाल शास्त्री, आर्य समाज, कीर्ति नगर, नई दिल्ली–110015
तिथि : श्रावणी पूर्णिमा, विक्रम संवत् 2064, दिनांक : 28 अगस्त, 2007

विषय–सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका

मानव जीवन की दिव्यता

{गर्भस्थ–जीवात्मा परमात्मा से अनुरोध करता है कि मेरे जो कर्म शेष रह गए हैं उनको करते हुए आत्मा को महान्, बनाने का प्रयत्न करूंगा तथा मोक्ष लाभ कर आपके आंगन में आकर परमानन्द को पा सकूँगा। इस संसार में आने का आत्मा का यही एकमात्र उद्देश्यं है।

किन्तु मानव इस संसार में जन्म लेकर कामनाओं, वासनाओं और विषयों में ऐसा फंस जाता है कि प्रकृति का दास बन जाता है। प्रकृति इसको आदेश देती है, यह प्रकृति की ओर झुक जाता है। प्रकृति में रमण करके ऐसा भटक जाता है कि अपने वचनों को भुला बैठता है। अपने महत्व को भुला कर सब कुछ नष्ट कर बैठता है।}

(मानव शरीर रूपी रथ का, रथी आत्मा है और इसका जो लक्ष्य है, ब्रह्म को प्राप्त करना है। ब्रह्म के द्वार पर जाकर, आनन्द ही आनन्द है। यह गाड़ी स्वतः हमसे पृथक हो जायेगी। यदि ऐसा नहीं करोगे, भोगवाद के क्षेत्र में चले जाओगे तो भोगी बन जाओगे। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

मानव जाति के लिए परमात्मा ने वेदों में उपदेश किया है :–

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। (यजु 26/2)

इस मंत्र में उपमालङ्.कार है। परमात्मा सब मनुष्यों को उपदेश देता है कि यह वेदरूप, कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिए मैंने प्रदान की है।

सुकर्मों का भी कुछ काल तक नियमित एवं नित्य आचरण करने से उनका अभ्यास और स्वभाव बन जाता है। यह अभ्यास ही है जिसे दूसरे शब्दों में आचार व आचरण कह सकते हैं अथवा यह सदभ्यास ही आचार व आचरण का जनक है और दुरभ्यास अनाचार का। अतः सुनियमित, सुनिश्चित दिनचर्या को अपनाना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। महाभारत में कहा है :–

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जात पक्षाः।।

अर्थात् जो वेद को पढ़ता रहे और उसके अनुसार आचरण न करे ऐसे आचारहीन पुरुष को वेद भी पवित्र नहीं करते, चाहे उसने वेदों को छः अंगों सहित भी पढ़ा

हो। ऐसे अनाचारी मनुष्य को वेद ज्ञान मृत्यु के समय इस प्रकार छोड़ देता है जैसे कि पक्षी पंख निकलने पर अपने प्रिय घोंसले को त्याग देता है।

"अतः परमेश्वर की सत्ता, धर्म=मानवता पुनर्जन्म तथा कर्मफलादि के प्रति अपनी आस्था रखते हुए वेदानुकूल आचरण धारण करते हुए सदाचारी जीवन व्यतीत करना ही इस मानव का एकमात्र उद्देश्य है।"

{जो मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है, आध्यात्मिक बनना चाहता है, आत्म–दर्शन करना चाहता है, तो व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करना होगा और समष्टि में ही ब्रह्मवाद है। ब्रह्मवादी जितने हैं, सब समष्टि में रहे हैं। व्यष्टि को उन्होंने त्याग दिया है और समष्टि में प्रवेश कर गए हैं। व्यष्टि कहते हैं संकीर्णता को और समष्टि कहते हैं व्यापकवाद को। ज्ञान के द्वारा जो विवेकी बनता है, वह समष्टि में चला जाता है।

जब मानव समष्टि में चला जाता है तो नाना प्रकार की संकीर्णता से दूर हो जाता है, पाप कर्म में मानव की प्रवृति नहीं रहती, वह सदैव अपने में महान बन कर पवित्र बन जाता है।

{यदि मानव का मार्ग यथार्थ और प्रकाशमय है, तो वह फिर रूढ़ियों में प्रवेश नहीं करता। वह अपने मनस्तत्त्व, अपनी सूक्तियों को और पिपासा को अन्तर्हृदय में ले जाता है और वहाँ अपना निर्णय कर लेता है कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ और यह प्रभु का अनन्तमयी राष्ट्र है तो उसे अज्ञान नहीं भासेगा और विचार–विनिमय करता हुआ अंत में मौन हो जाता है।} (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में लिखा है कि जो मनुष्य दुष्कर्म करता है, उसको पेड़–पौधे आदि की योनि में जाना पड़ता है तथा अष्टम् समुल्लास में शरीर रचना में भी अष्ट–चक्रों की चर्चा नहीं है। इनका ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के यौगिक प्रवचनों में उक्त शंकाओं तथा अनेक शंकाओं का समाधान सरल, सरस और भावपूर्ण व्याख्या है।

महर्षि दयानन्द जी द्वारा विरचित ग्रन्थों में संस्कार विधि अन्तिम ग्रन्थ है और किसी भी लेखक का अन्तिम ग्रन्थ प्रामाणिक होता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार संस्कारों के लिए व इन यज्ञ विधियों के लिए संस्कार विधि सर्वाधिक प्रामाणिक है। बृहद् यज्ञों को ध्यान में रखते हुए तथा इस पुस्तक को उपयोगी बनाने की दृष्टि से संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण की विधियां भी संस्कार विधि के क्रम के अनुसार छापी गई हैं।

हम प्रायः बच्चों से तथा अन्य लोगों से कहते रहते हैं कि सन्ध्या, हवन किया करो। परन्तु जब तक उनके हाथ में ऐसी पुस्तक न दी जाये जिसमें उन्हें मंत्रों तथा अर्थों का दर्शन हो तब तक वे कैसे इसको अपना सकते हैं। सो मैंने इसी अभिलाषा से इस पुस्तक में विविध मंत्रों का तथा आध्यात्मिक अर्थों का भी संकलन किया है। पाठकों का जीवन सुख, शांति और आनन्द की ओर अग्रसर हो, यही मेरे परिश्रम की सार्थकता होगी, आशा है, स्वाध्याय प्रेमी सज्जन इससे लाभ उठायेंगे।

स्व. श्री हरिकिशन बस्सी, स्व. श्री के.जी. खोसला, स्व. श्री महावीर (लालाजी), चौ. नफेसिंह देसवाल, श्री रवि प्रकाश गुप्ता, श्री बृजमोहन शर्मा, श्री हरिराम गुप्ता, डा. आर.के. गोयल, श्री भीम सिंह, इन सभी के सत्संग में रहकर तथा सादगी की साक्षान्मूर्ति पूजनीय पिता स्व. पं. तुहिराम, कुलगौरव पूजनीया माताजी फूलकौर जिनके स्नेहिल व्यवहार, ज्येष्ठ भ्राता स्व. पं. रिज़कराम कौशिक से प्रेरणा पाकर मुझे यह पुस्तक लिखने का जीवन में सुअवसर मिला है।

इस पुस्तक के परामर्शदाता डा. ऋषिपाल शास्त्री जी, डा. कृष्ण अवतार शास्त्री जी, आचार्य गुरुवचन शास्त्री जी और आचार्य वैद्य विक्रमदेव शास्त्री जी ने अपने व्यस्त ज़ीवन के अमूल्य समय का निस्वार्थ योगदान दिया है, मैं इन सभी का आजीवन आभारी रहूँगा। विद्वान् लोगों के हाथों में यह पुस्तक जाएगी। यदि इसमें त्रुटियाँ रह गईं हों तो भविष्य में सुधार दी जाएंगी।

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि–ज्योतिरुत्तमम्। यजु॰ 35।14

इस मन्त्र में ज्ञान की तीन अवस्थाएँ (उच्च) प्रकृति (उच्चतर) आत्मा, (उत्तम) परमात्मा वर्णित है अर्थात् पहले हमें प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, फिर आत्मा का अंत में परमात्मा का सो मैंने इसी मन्त्र की व्याख्या को ध्यान में रखते हुए इन तीन अवस्थाओं का क्रमवार संकलन किया है।

समर्पण

पूज्यपाद गुरूदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी ब्रह्मचारी का आशीर्वाद पाकर सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द प्रभु की पावन प्रेरणा से मैंने यह पवित्र प्रयास किया है, वही इसे सफल बनाएं। इसलिए उसी सर्वव्यापक की सेवा में मेरा समर्पण है। उसी का उसी को अर्पण है।

जयनारायण कौशिक 'जिज्ञासु'

मनुष्य तू इतना तो जान

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज के योगमुद्रा में दिए गए "प्रकृति" सम्बन्धित प्रवचनों का संक्षेप में विवरण)

सृष्टि रचना का अलंकारिक विवरण :

ईश्वर सृष्टि करता, जीव भोक्ता और प्रकृति भोग्या

(ईश्वर, जीव और प्रकृति [जगत का कारण] ये तीनों अनादि हैं।)

"शिव नाम परमात्मा का है तथा लिंग नाम प्राण का है। जब यह प्राण संसार में बिना प्रकृति के आता है तो त्राहिमाम्–त्राहिमाम् कर देता है। देवता उस समय प्रकृति से याचना करते हैं कि हे पार्वती ! तू आ और इस प्राण रूपी लिंग को अपने में धारण कर। प्रकृति आती है, भग नाम प्रकृति का ही है। वह अपने में इस प्राण को धारण करके शान्त कर देती है। प्रकृति द्वारा प्राण को धारण करने से सृष्टि आरम्भ हो जाती है।"

सृष्टि एवं रचना

सृष्टि= प्रकृति और महत् दोनों पृथक् वस्तु हैं, इनके मिश्रण से जो तीसरी वस्तु बनती है, उसे सृष्टि कहते हैं। इस सृष्टि को बने एक अरब, सत्तानवें करोड़, उनत्तीस लाख, उनच्चास हजार, एक सौ सात वर्ष (1,97,29,49,107 वर्ष) हो चुके हैं। सृष्टि के आरम्भ में यह पृथ्वी आग का गोला थी।

सृष्टि के आदि में व्याकरण और अक्षरों का बोध हुए एक अरब, छयानवें करोड़, आठ लाख, त्रेपन हजार, एक सौ सात वर्ष (1,96,08,53,107 वर्ष) हो चुके हैं, जब ब्रह्मा ने अनहद को जाना था।

शिव रूपी प्रभु ने पार्वती रूपी प्रकृति को महत् दिया, सत्ता दी, नाना तन्मात्राओं के द्वारा इस संसार को उत्पन्न किया। सबसे पूर्व जब यह पृथ्वी शीतल बनने लगी, समता आने लगी, विश्वकर्मा ने तन्मात्राओं और पंच–महाभूत इन सबका संगठन बनाकर सृष्टि का कार्य आरम्भ किया।

सबसे पूर्व वनस्पतियों को उत्पन्न किया जिसे 'स्थावर सृष्टि' कहते हैं। वृक्ष योनि में नाना प्रकार की जातियाँ हैं जिनमें औषधियाँ भी हैं।

नाना ऐसे पौष्टिक पदार्थ भी हैं, जिन पर मानव के जीवन का निर्वाह होता है। प्रभु ने हमारे खान–पान का प्रबन्ध पहले ही कर दिया।

इसके पश्चात् अण्डज और उद्भिज सृष्टि को उत्पन्न किया। इसमें जल तथा वृक्षों पर रहने वाले प्राणी हैं। ये जल के उन दुर्गुणों का आहार कर लेते हैं जो मानव के लिए हानिकारक है। वे जल को शुद्ध कर देते हैं जिससे मानव को कोई हानि न हो। इसके पश्चात् जरायुज सृष्टि का निर्माण किया जिसे 'जङ्गम् सृष्टि' भी कहते हैं। इनमें पशु है तथा मानव जाति है।

इस प्रकृति में स्वतः ही पूर्व की भांति सब बीज रूप अंकुर में रहता है। प्रभु ने अपनी महत्ता से तथा चेतना सत्ता से इस संसार को रचाया। जिस प्रकार बेल का वृक्ष योनि का बीजांकुर इस सृष्टि में विराजमान रहता है। इसी प्रकार पुरूष का तथा महत् का पूर्व भांति अंकुर रहता है, वह उत्पन्न हो जाता है। जब माता पृथ्वी तथा पिता प्रभु दोनों की समता हो जाती है तो सृष्टि का निर्माण हो जाता है, उस समय यह सृष्टिक्रम नियमबद्ध चला करता है।

वेद कहता है कि जिस समय सृष्टि का आरंभ होता है उस समय वे विमुक्त आत्मायें होते हैं, जिन्हें पूर्व काल का ज्ञान रहता है। आकर परमात्मा के नियम के अनुसार शरीर धारण कर लेते हैं और यह संसार बन जाता है।

प्रलय काल में वे लोक–लोकान्तर एक पिण्डाकार के रूप में परिणत हो जाते हैं। सब विद्याएं वेद–ज्ञान परमात्मा के पूर्व नियम के अनुकूल परमात्मा के गर्भ में चली जाती हैं तथा आत्मा, परमात्मा के गर्भ में निवास करती हैं।

प्रकृति–(सत्त्व) शुद्ध, प्रकाशात्मक **(रजः)** मध्य क्रियाशील **(तमः)** जांड्य अर्थात् जड़ता, प्रकाशक क्रिया को स्थिर करने वाला, तीन वस्तु मिलकर जो संघात है, उसका नाम प्रकृति है।

महत्तत्व–(अंकुर) जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकठ्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परम सूक्ष्म प्रकृति स्वरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम 'महत्तत्व' है। –ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

"ऋतस्य धीर्तिवृजिनानि हन्ति।"

ऋ॰ 4/23/6

ऋत का चिन्तन पाप–वासनाओं को नष्ट कर देता है।

ऋत और सत्

ऋत और सत् की परिभाषा–

प्रकृति में परमात्मा की नियमबद्ध क्रिया को ऋत कहते हैं। इस प्रकृति की प्रक्रिया तथा हमारे शरीर की प्रक्रिया सब ऋत कहलाती है। इस ऋत को जान कर ही ऋत्विज बन जाता है। प्रत्येक मानव को इस ऋत को जानना चाहिये।

ऋत नाम चैतन्य शक्ति का है। क्योंकि उसी के आश्रित हम सब जकड़े रहते हैं, उसी के कटिबद्ध रहते हैं। हम सदैव ऋत और सत् के आंगन में रमण करते रहते हैं–जब हम विज्ञान के क्षेत्र में, तप के क्षेत्र में, मनस्तत्त्व के क्षेत्र में विचारते हैं, तो यह सब ऋत का ही वर्णन है। जिस शक्ति से क्रिया करते हैं, तपते हैं, उसका नाम ऋत है।

ऋत के सम्बन्ध में जानकारी के लिये आदिऋषि शाण्डिल्य, मुद्गल, सुकेतु, भृगु आदि पापड़ी ऋषि के पास गये।

प्रश्न किया कि ऋत क्या है?

पापड़ी ऋषि ने उत्तर दिया : ऋत उसे कहते हैं जिसमें ब्रह्म का वास होता है। अर्थात् जिसमें ब्रह्म परिणित रहता है। ऋत और सत् दो ही पदार्थ हैं। जिनमें अन्तर यह है कि सत्यता के गर्भ में कहीं–कहीं मिथ्या रहता है और कहीं–कहीं मिथ्या के गर्भ में सत्य भी रहता है। ऋत ऐसा शब्द है, ऐसी एक रचना है कि वह प्राणिमात्र के हृदय में ओत–प्रोत हो रही है। ऋत कहते हैं विद्युत को जो विद्युत सारे संसार के प्राणिमात्र में रमण कर रही है जिसके क्रियात्मक होने से ही वे सब क्रियाएं उत्पन्न होती हैं उसी का नाम ऋत है।

सत्य तीन प्रकार का होता है :–

1. सत्य ही ब्रह्म है या ब्रह्म ही सत्य है।
2. प्रकृति सत्य प्रतीत होती है।
3. जीव आत्मा सत्य प्रतीत होता है।

परन्तु प्रकृतिवाद और जीवात्मा के सत्य में परिवर्तन आता रहता है। और ब्रह्म जो सत्य है, उसमें परिवर्तन नहीं होता।

इसलिये उसके गर्भ में यह संसार समाहित रहता है। विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है कि सत्य केवल ब्रह्म है। जो सर्वत्र विद्यमान है। वह सच्चिदानन्द है। शुद्ध-बुद्ध निरंजन है, उसी को सत्यदेव कहते हैं।

प्रकृति हमें कहीं स्थूल रूप में प्रतीत होती है, कहीं सूक्ष्म रूपों में परन्तु उसका स्थूलता में भी अभाव है तथा सूक्ष्मता में भी। इसका कारण यह है कि जो उसकी क्रिया है यह स्वयं प्रकृति की नहीं। वह सत्य अवश्य है किन्तु सत्यता में अभाव है।

जैसे एक मानव है। इस शरीर से जब यह आत्मा निकल जाता है तो उस शरीर की सत्यता में परिवर्तन आ जाता है। यद्यपि इस पर सूक्ष्मता से विचारने पर स्पष्ट हो जाता है कि इस शरीर का अभाव नहीं हुआ क्योंकि जिन कणों से यह बना हुआ था वे तो जो ज्यों के त्यों हैं। उनका अभाव नहीं हुआ। किन्तु उनके अभाव को इस कारण स्वीकार करना पड़ता है कि वे प्रकृति के कण हैं और उनमें जो क्रिया है, वह किसी चैतन्य की है किसी सत्य की है। इसीलिये उस सत्यता में परिवर्तन और अभाव प्रतीत होता है।

जब हम यह जान लेते हैं कि संसार की चेतनावादी प्रक्रिया कहाँ से आती है, उसका मूल क्या है? इसी को ऋत कहते हैं। जिस चेतना से हम इन्द्रियों का पान करते हैं, उसी का नाम ऋत है।

ऋत नाम प्रकृति का वाची है और सत् नाम ब्रह्म का वाची है क्योंकि सत् ही ब्रह्म है। दोनों का जब समन्वय होता है तो ब्रह्माण्ड अपनी-अपनी क्रिया में दृष्टिपात होने लगता है।

योग में ऋत-सत् का समन्वय

योगी वह होता है, सत्वादी वह होता है जो प्रकृति के आवेश में रमण

करता रहता है और परमात्मा को जानना चाहता है। वह सत्–रज–तम को जान करके ऊर्ध्वा में रमण करता है। सर्वप्रथम वो सत् के गर्भ में जायेगा क्यों सत् में प्रकृति है प्रकृतिवाद में रत हो जाता है, उसके पश्चात् इससे उपराम हो जाता है और उपराम हो करके वो मौन हो जाता है। क्योंकि प्रकृतिवाद का जो क्षेत्र है, वो समाप्त हो जाता है। वह अनाहद में चला जाता है, जैसे सुर–संगम, हमारे मस्तिष्कों में एक ध्वनि आ रही है, उस ध्वनि को वो श्रवण करने लगता है। अपने में नृत्य करने लगता है। मानो वो रज और तम, देखो सबसे ऊर्ध्वा में गमन करता हुआ वह ब्रह्म के रसास्वादन को पान करने लगता है। प्रकृति का क्षेत्र उसका समाप्त हो जाता है।

ऋत में सत् पिरोने का रहस्य

देखो, यह जो सत् में रमण करने वाला जो ब्रह्म है और देखो ऋत में रहने वाली जो प्रकृति है, इन दोनों का परस्पर, देखो समन्वय जब होता है तो यह ब्रह्माण्ड अपने–अपने रूप में दृष्टि में आने लगता है। यह एक माला है। इस माला को जो धारण करता है वो देखो, योग की अपनी–अपनी आभा में रमण करने लगता है। मानो ऋत और सत् में ही तो नाना प्रकार की मालाओं को देखो, वैज्ञानिक और योगेश्वर अपने में धारण करते रहते हैं और एक सूत्र बना करके मानो देखो उसमें पिरोये हुए हैं।

प्रकृति की मालाएं

जब परब्रह्म परमात्मा का ऋत–सत् दोनों का उग्र रूप बनता है और यह संसार–रचना में दृष्टिपात आते हैं तो एक–एक माला, माला बन जाती है तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिये यह माला, माला बन जाती है और यह ऐसी माला है, ऐसी मालाओं को तुम गणना में नहीं ला सकते, मानो देखो मानव अन्त में मौन हो जाता है। तो मैं मालाओं को दृष्टिपात कराने लगूंगा तो बड़ा आश्चर्य होने लगेगा। मानो देखो, एक–एक अणु और परमाणुओं की माला बन जाती है अणु और परमाणु की माला कैसी है? जब देखो मानव–शरीर को मानव स्थूल–शरीर को त्यागता है जब यह जीवात्मा, जीवात्मा के साथ में चित्त मण्डल होता है और चित्त के मण्डल में मानो देखो उसका जितने आकार का वो मानव का शव है, स्थूल शरीर

उतने ही शव के आकार में, मानो देखो परमाणु अपनी–अपनी आभा में गमन करने वाला रहता है और उतने ही आकार का देखो वह अपने–अपने आकार का बन करके, देखो वह शव रमण करता है। उसे हमारे यहां सूक्ष्म शरीर के रूप में वर्णित करते रहते हैं।

जब आत्मा शरीर त्यागता है आत्मा के साथ में जो सूक्ष्म शरीर जाता है और वही मानो संस्कारों को ले करके वह माता के गर्भस्थल में शिशु के रूप में परिणित हो जाता है। जितने परमाणुओं से इन मालाओं को ले करके माता के गर्भ में जब वे माला प्रवेश होती है वह सूक्ष्म शरीर वाली माला और मानो देखो वह माता के शरीर में स्थूल शरीर का निर्माण होता है मानो देखो उस आकार वाले शरीर में समाधिस्थ करता हुआ एक सूत्र में सूत्रित होता हुआ इनको अनुभव करता रहता है, देखो आकार बनते रहते हैं। उन आकारों की एक माला बन जाती है।

देखो, मैं तुम्हें बहुत–सी वार्ताएं इसलिये विज्ञान की प्रकट करना चाहता हूँ कि जिसमें मानव देखो विज्ञान में, परमात्मा की सृष्टि में कितने अधूरेपन में रमण कर रहा है। कहीं नक्षत्रों की माला बन जाती है और मालाओं को धारण करता रहता है परन्तु नक्षत्रों से ऊर्ध्वा में गमन करने वाले परमाणुओं की माला है और वह परमाणुओं की अणुओं की माला है। उस माला को देखो, योगी और वैज्ञानिक योगेश्वर अपने में धारण करने वाला है।

जब यह आत्मा इस शरीर रूपी क्षेत्र में आकर उच्च कर्म करता हुआ तथा प्रकाश का संचय करता हुआ, कर्मों का फल भोग कर समाप्त कर लेता है तब यह परमानन्द को प्राप्त हो जाता है, उस समय भौतिक पदार्थों से अलग होकर परमपिता की गोद में पहुँच कर परमानन्द प्राप्त करने वाले रूप में रूपानान्तर ही हो जाता है; संस्कारों के न रहने का नाम ही मोक्ष है।

जब जीव मन के साथ माता के गर्भ में निवास करता है, उस समय यह न तो व्याकुल होता है और न श्वास लेता है, न अपने मुख से परमात्मा की स्तुति आदि ही कर पाता है, तो भी इसका सम्बन्ध मन के द्वारा

परमात्मा से रहता है। उस समय परमात्मा की सेवा में कहता है कि हे प्रभु! मैं इस अन्धकार से पृथक् होना चाहता हूँ यहाँ मुझे कर्म करने का अवसर नहीं मिल रहा। मुझे उस तेज को दो, उस प्रकाश को दो, जिससे संसार क्षेत्र में आकर कर्म करने के लिये उद्यत हो जाऊँ।

यह आत्मा जिस प्रकार गर्भ में रहता हुआ याचना करता है उसी प्रकार प्रलय काल में भी जीवात्माएं अन्धकार से निकलने की याचना करते हैं उस समय परमात्मा नियम के अनुसार संसार को उत्पन्न कर देते हैं।

आत्मा–परमात्मा का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसे माता व पुत्र का, पिता और पुत्र का। परमात्मा को प्रत्यक्ष तथा साक्षात्कार करने से पहले अपनी आत्मा को अच्छी प्रकार से जाने, समझे, आत्मा में उस पारब्रह्म को पावे यह आत्मा भी पारब्रह्म को पाकर "ब्रह्मा" बन जायेगा। पारब्रह्म कदापि नहीं बनेगा।

ऐसा न होने पर यह आत्मा कर्मों के चक्रों में फिरता रहेगा। आत्मा में अपूर्णता है, सीमितता है, हम इस काल कोठरी में, अजिर (आंगन चौक) में शरीर में आए हुए हैं। हमारा ज्ञान, विज्ञान, कार्य और नियम आदि सभी सीमित हैं। (सूक्ष्म शरीर ही कर्मफल का सुख और दुःख भोगता है और यह ही आवागमन करता है।)

लोक–लोकान्तरों की स्थिति

परमात्मा द्वारा उत्पन्न आकर्षण–शक्ति तथा उसकी महान् विद्युत के आधार पर यह पृथ्वी स्थित है।

पिण्ड का निर्माण व गुण–गुरुत्व, अग्नि और जल।

परिक्रमा का अभिप्राय यह है कि ये लोक–लोकान्तर एक–दूसरे की आकर्षण–शक्ति से ही स्थिर हैं और अपने–अपने आंगन में रमण करते रहते हैं।

अवन्तिका

"ब्रह्माण्ड के लोक–लोकान्तरों की माला–गणना"

1. 30,00,000 पृथ्वियों के मनके रूपी माला बन करके सूत्र रूपी सूर्य में पिरोयी हुई है।
   (अर्थात् 30,00,000 पृथ्वियाँ एक सूर्य की परिक्रमा कर रही हैं।)
2. 1,000 (एक सहस्त्र) सूर्यों के मनके रूपी माला बन करके उन्हें बृहस्पति धारण कर रहा है।
3. 1,000 बृहस्पतियों के मनके रूपी माला बन करके उन्हें अरूणी मण्डल धारण कर रहा है।
4. 1,000 अरूणी मण्डलों की माला बनी उन्हें ध्रुव अपने में धारण कर रहा है।
5. 1,000 ध्रुव मण्डल की माला बनी उन्हें स्वांति–नक्षत्र अपने में धारण कर रहा है।
6. 1,000 स्वांति–नक्षत्रों की माला बनी उन्हें पुष्य नक्षत्र अपने में धारण कर रहा है।
7. 1,000 पुष्य–नक्षत्रों की माला बनी उन्हें रोहिणी–केतु अपने में धारण कर रहा है।
8. 1,000 रोहिणी–केतु मण्डल की माला बन करके वे अचंग लोंगों में ओत–प्रोत हैं।
9. 1,000 अचंग–मण्डल की माला बन करके वे मिहित केतु मण्डल में ओत–प्रोत हैं।
10. 1,000 मिहित केतु मण्डल की माला बन करके वे मूल नक्षत्र में ओत–प्रोत हैं।
11. 1,000 मूल नक्षत्रों की माला बन करके वे व्रेत केंतु मण्डल में ओत–प्रोत हैं।
12. 1,000 व्रेत केतु मण्डल गंधर्व में ओत–प्रोत हो जाते हैं।
    (यह माला का अन्तिम मनका है।)
13. 1,000 गन्धर्व मण्डल की माला बन करके वह सौर–मण्डल में ओत–प्रोत है।
14. 1,000 सौर मण्डलों की एक आकाश–गंगा बनी।
15. 1,86,18,48,561 के लगभग आकाश गंगाओं की एक निहारिका बन जाती है। परमात्मा का अनुपम ब्रह्माण्ड है।

16. पौने दो अरब निहारिकाओं की एक अवन्तिका बन जाती है।
    (एक आकाश गंगा में 5 खरब, 5 अरब, 85 करोड़, 89 लाख, 52 (5,05,85,89,00,052) सूर्य हैं।)

(विशिष्ट पुरुषों ने चार प्रकार के लोकों की विवेचना की है– प्रथम आत्म–लोक, द्वितीय पितर–लोक, तृतीय गन्धर्व–लोक एवं चतुर्थ में ब्रह्म–लोक का वर्णन आता है। आत्म लोक (शरीरधारी आत्मायें) द्वितीय पितर लोक (सूक्ष्म शरीरधारी आत्मायें, जो देववत् कर्मानुसार सोन्तति वायु में, देवताओं में रमण करता हुआ पुनः संसार में, आवागमन में आ जाता है।) तृतीय गन्धर्व लोक (सूक्ष्म शरीरधारी आत्मायें, जो मोक्ष के निकट हैं।) चतुर्थ ब्रह्म लोक।

यह मालाओं का जगत् है। इसलिए प्रत्येक मानव को यदि तपस्या करनी, तपश्चर बनना है तो इस सृष्टि को निहारते रहो, जानते रहो, परन्तु देखो इस संसार में अपने को देखो। इसमें रत कर जाओ। इसका नाम देखो तपश्चर कहलाता है और इसको जानकर के इसको अपने में सिमट जाओ और जब सिमट जाओगे तो देखो, वह कैवल्य, प्रभु का दर्शन होता रहेगा, आनन्द को हम अपने–अपने में अनुभव करते रहेंगे।

अरे मानव को संसार के पापाचारों में तो जाने का तो मानो समय ही नहीं प्राप्त होता। यदि वह प्रभु की सृष्टि को निहारने लगता है प्रभु की सृष्टि को अपने में, अपनेपन में प्राप्त करने लगता है।

चन्द्रमा अपनी षोडश कलाओं से युक्त प्रतिपदा से लेकर के पूर्णेष्टि तक और पूर्णेष्टि की प्रतिपदा से लेकर अमावस तक यहाँ शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष भी इसी आधार पर आधारित है। चन्द्रमा सदैव अपनी आभा में रत रहता है। क्रियात्मकता में अमावस की प्रतिपदा से लेकर के पूर्णेष्टि तक ये षोडश कला कहलाती है। इन कलाओं में अपना–अपना महत्व माना गया है। इन कलाओं का समन्वय पृथ्वी से होता है।

ओ३म् यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानिविश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सँ रराणस्त्रीणि ज्योतीथंषि सचते स षोडशी।।

यजु॰ 8।36।।

मन्त्रार्थ :– (यस्मात्) जिस परब्रह्म से (अन्यः) दूसरा कोई भी (परः) उत्तम पदार्थ (जातः) प्रकट (नास्ति) अर्थात नहीं है, (य आविवेश भुवनानि विश्वा) जो सब जगह में व्याप्त हो रहा है (सः) वही (प्रजापतिः प्रजया) सब जगत् का पालनकर्ता (संरारणः) और उत्तमदाता है, जिसने (तीणि ज्योतिषि) अग्नि, सूर्य और बिजली इन तीन ज्योतियों के प्रजा के प्रकाश के लिए (सचते) रचके संयुक्त किया है और जिसका नाम 'षोडशी' है अर्थात् (1) ईक्षण, जो यथार्थ विचार (2) प्राण, जो सब विश्व का धारण करने वाला (3) श्रद्धा, सत्य में विश्वास (4) आकाश (5) वायु (6) अग्नि (7) जल (8) पृथ्वी (9) दसो इन्द्रियाँ (10) मन, अर्थात् ज्ञान (11) अन्न (12) वीर्य, बल और पराक्रम (13) तप, अर्थात् धर्मानुष्ठान सत्याचार (14) मन्त्र, अर्थात् वेद विद्या (15) कर्म, अर्थात् सब चेष्टा (16) नाम, अर्थात् दृश्य और अदृश्य पदार्थों की संज्ञा, ये ही सोलह कलायें हैं। ये सब ईश्वर के ही बीच में है। इससे उसको षोडशी कहते हैं।

(सृष्टि की रचना, चन्द्रकला, पदार्थों की संज्ञा, सोलह कलाओं आदि के आधार पर ही भार तोलक (एक सेर में सोलह छटांक) और मुद्रा (एक रू. में 16 आने) का प्रचलन हुआ। एक से सोलह तक की गणना को शुभ स्वीकार करते हुए ऋषियों ने निम्न को उक्त आधार पर ही रखा है–

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदिता विधिः

(मनुस्मृति 2।16)

मनुष्यों के शरीर और आत्मा उत्तम होने के लिए निषक अर्थात् गर्भाधान से लेकर शमशानान्त मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं।

जन्म से पूर्व तीन संस्कार–1. गर्भाधान, 2. पुंसवन तथा 3. सीमान्तोन्नयन

जन्म के पश्चात् के संस्कार–4. जात कर्म, तदनन्तर–5. नामकरण, 6. कर्णवेध, 7. निष्क्रमण, 8. अन्न प्राशन, 9. मुण्डन (चूड़ाकर्म), 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. विवाह, 13. गृहाश्रम–विधि, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास तथा 16. अन्त्येष्टि कर्म–विधि।

भगवान् कृष्ण और सोलह कलाएँ

भगवान् श्रीकृष्ण सब कार्य विद्वत्ता से करते थे। जहां, उनका जीवन इतना बलिष्ठ और इतना चातुर्यता में था, उतना ही उनका यौगिकता में गमन था। वह सोलह कलाओं को जानते थे। षोडश कलाएं क्या होती हैं? मानो वह ज्ञान में पारंगत होता है, जो षोडश कलाओं को जानता है।

सबसे प्रथम कला का नाम **प्राचीदिक्, दक्षिणादिक्, प्रतीचीदिक्, उदीचीदिक्,** चार ये कलाएं मानी गई हैं। **पृथ्वी कला, वायु कला, अन्तरिक्ष कला और समुद्र कला,** चार कलाएं ये थीं और तृतीय स्थान में **सूर्य कला, चन्द्र कला, अग्नि कला और विद्युत कला,** चार कलाएं ये थीं, जिनको जानने के लिए भगवान् कृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। जैसे विद्युत है, अग्नि है और अन्तरिक्ष है इनमें जितनी प्रतिभा होती है, उसको जानते थे। इसके पश्चात् **मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला,** इन सबको वे जानते थे। ये षोडश कलाएं कहलाई जाती हैं, जिनको भगवान् कृष्ण अच्छी तरह जानते थे।

परमात्मदेव की सोलह कलाओं को जो मानव जान जाता है वह योगेश्वर बन जाता है।

श्रेष्ठ सन्तान

यह वेद में विद्या है, यदि माँ ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने वाली बन जाए जिससे इस संसार का कल्याण हो जाए और संसार विलक्षण बन जाए। मैंने पूर्व काल में नक्षत्रों का वर्णन किया मेरी प्यारी माता जब परमात्मा के नियमों के अनुकूल ऋतु काल स्पष्ट हो जाए तो उस समय तू यज्ञवती हो, उस समय जब तेरी सोलहवीं अररुत सोलहवीं रात्री आए तो तू अपने पति के द्वारा 'ऋतुगाम' बनकर श्रेष्ठ बालक को उत्पन्न कर, परन्तु तेरे द्वारा वेद की अनुपम विद्या होनी चाहिए।

जिस समय सोलहवीं रात्रि का जेठा (ज्येष्ठा) नक्षत्र हो और यदि उस काल तेरे बालक का गर्भ स्थापित हो गया तो निश्चित है कि वह जो बालक होगा वह संसार का वीर बालक कहलाएगा, इस विद्या को जान लेने की आवश्यकता है।

यदि ग्यारहवीं रात्रि हो अथवा बारहवीं रात्रि हो और उस समय पूरा (पू.भा.) नक्षत्र हो तो निश्चित है कि उस माता के गर्भस्थल से दैत्य बालक उत्पन्न होगा।

ऋतुदान का काल

मनुस्मृती अ. 3/45–50

स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल सोलह रात्रि का है। उनमें प्रथम चार रात्रि, अर्थात् जिस दिन रजस्वला, उस दिन से चार दिन निन्दित है वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित और बाकी रही दस रात्रि, सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ है। पौर्णमासी, अमावास्या, चतुर्दशी व अष्टमी आवे उसको छोड़ देवे, इनमें स्त्री–पुरुष रतिक्रिया कभी न करे।

जिनको पुत्र की इच्छा हो छह, आठ, दस, बारह, चौदह, सोलह ये छह रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें।

'ब्रह्म यज्ञ' संध्या में सोलह मन्त्र हैं। अन्न बलिदान के भी सोलह मन्त्र हैं।
दैनिक यज्ञ में ऋषि दयानन्द ने सोलह आहुतियों की आज्ञा दी है।
अग्न्याधान में भी सोलह आहुतियों की गणना की गई है।
उक्त आधार पर ही विद्वानों ने आत्मपावन, श्रीसूक्त आदि के मन्त्रों की गणना भी सोलह रखी है।

सृष्टि चक्र
(सृष्टि चक्र से गणना की उत्पत्ति)

राजा जनक के दरबार में महर्षि याज्ञवलक्य, माता मदालसा के संवाद में ओतप्रोत की चर्चाओं का विवरण :–

1. जड़ सृष्टि	अण्डज में ओतप्रोत है।
2. अण्डज सृष्टि	जङ्गम में ओतप्रोत है।
3. जङ्गम सृष्टि	उद्भिज में ओतप्रोत है।
4. उद्भिज सृष्टि	पृथ्वी में ओतप्रोत है।
5. पृथ्वी सृष्टि	आपो में ओतप्रोत है।
6. आपो सृष्टि	अग्नि में ओतप्रोत है।
7. अग्नि सृष्टि	वायु में ओतप्रोत है।

8. वायु सृष्टि — अन्तरिक्ष में ओतप्रोत है।
9. अन्तरिक्ष सृष्टि — महत्तत्व शून्य बिन्दु में प्रवेश कर जाता है।
10. यह जगत् क्या है ? — शून्य बिन्दु है।

शून्य बिन्दु में देखो गति तीव्र होने पर यह रचना दृष्टिपात आने लगती है। (भौतिक विज्ञान का सबसे बड़ा रहस्य जिसे आधुनिक विज्ञान सत्यापित कर सका है।)

क्रम संख्या 1 से 9 तक जड़ जगत् और चेतन जगत् एक–दूसरे में ओतप्रोत है और क्रम संख्या 10 में ये जगत् शून्य बिन्दु में प्रवेश कर जाता है। एक से नौ तक के अंक हमारी सभी गणनाओं का आधार है। सृष्टि के ओतप्रोत के आधार पर ही गणनाओं का प्रचलन हुआ है।

मानव–गर्भावस्था के नौ मास पनपते रहते हैं क्योंकि नौ तक संसार की गणना है और नौ ही सूर्य की रश्मियाँ हैं।

शरीर त्यागते समय आत्मा की गति–मानव शरीर के नौ द्वार हैं। इन नौ द्वारों से मनुष्य की आत्मा निकलती है। उनका संसार में आवागमन चलता रहता है। दसवाँ द्वार योगी का होता है जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, उनका आत्मा विमुक्त आत्माओं, जो मोक्ष के निकट जाने वाली आत्माएँ हैं, में रमण करता है।

बलिवैश्वदेव यज्ञ में परमपिता परमेश्वर के स्वामित्व गुणों का गुणगान करते हुए नौ आहुतियाँ समर्पित करते हैं और दसवीं आहुति सबके इष्ट सुख देने वाले परमात्मा को समर्पित करते हैं।

सृष्टि की अवधि

जैसे माँ के गर्भ की अवधि निश्चित है वैसे ही सृष्टि और प्रलय की अवधि भी निश्चित है। आदि ब्रह्मादि तथा मनु इत्यादि का यह निर्णय है कि संसार की रचना गणित विद्या के अनुसार नियमानुसार है तथा विलक्षण है।

महाप्रलय की अवधि का माप

1. सतयुग	17,28,000 मानव वर्ष
2. त्रेता	12,96,000 मानव वर्ष
3. द्वापर	8,64,000 मानव वर्ष
4. कलयुग	4,32,000 मानव वर्ष
5. चतुर्युगी	43,20,000 मानव वर्ष

(1,000 चतुर्युगियों अथवा 4,32,00,00,000 वर्षों का एक सृष्टि कांल)

6. मन्वन्तर	71 चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर
7. ब्रह्मदिन	14 मन्वन्तरों का और इतने ही वर्षों की ब्रह्मरात्रि
8. अहोरात्र	2,000 चतुर्युगियों एकं अहोरात्र (एक ब्रह्म दिन और एक ब्रह्म रात्रि का)
9. ब्रह्मवर्ष	360 अहोरात्र का ब्रह्मवर्ष
10. महाप्रलय	100 ब्रह्मवर्ष की महाप्रलय (आत्मा शतायु होने तक मोक्ष में रहता है।)

(3600 बार सृष्टि की रचना तथा प्रलय काल को महाप्रलय काल कहा जाता है।)

वर्तमान सृष्टि

एक सृष्टि का काल 4,32,00,00,000 वर्ष अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष निश्चित है इसमें मन्वन्तर चौदह होते हैं। एक मन्वन्तर में इकत्तर चतुर्युगी होती है और इस प्रकार से एक सहस्र चतुर्युगियों का सृष्टिकाल होता है। इतना ही प्रलयकाल होता है। (1,97,29,49,107 वर्ष इस सृष्टि के व्यतीत हो चुके हैं।)

यह जो वर्तमान सृष्टि है इससे पूर्व छः मन्वन्तर बीत चुके हैं, सातवें मन्वन्तर के भोग में यह 28वीं चतुर्युगी है अर्थात् 27वीं चतुर्युगी बीत चुकी है।

6 मन्वन्तरों की अवधि	1,84,03,20,000 मानव वर्ष
27 चतुर्युगियों की अवधि	11,66,40,000 मानव वर्ष
सत्युग की अवधि	17,28,000 मानव वर्ष
त्रेतायुग की अवधि	12,96,000 मानव वर्ष
द्वापर की अवधि	8,64,000 मानव वर्ष
कलयुग की अवधि (जो बीत चुकी है)	5,107 मानव वर्ष
इस सृष्टि में व्याकरण और अक्षरों का बोध हुए (जब ब्रह्मा ने अनहद को जाना था।)	1,96,08,53,107 मानव वर्ष

'सूर्य', परमात्मा की सत्ता को पान करता हुआ संसार को प्रकाश देता है। प्रकृति में जो नाना तत्व हैं, उनमें एक महत्ता और ओज देता है, ओज देकर महत् देता है, 'जिससे संसार का कार्य चलता है।' महत् का सम्बन्ध परमात्मा से है, आत्मा का सम्बन्ध महत् से होता है। इस प्रकार जब हमारा सम्बन्ध परमात्मा से हो जाता है तो हमारा उत्थान हो जाता है। —ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज के योगमुद्रा में दिए गए "आत्मा" सम्बन्धित प्रवचनों का संक्षेप में विवरण)

सृष्टि का उपभोक्ता आत्मा अविनाशी है

(जो अजर, अमर तथा नित्य है।)

आत्म लोक :

"लोक उसे कहते हैं जहां किसी का वास हो।" लोक का अभिप्राय इतना ही है कि आत्मा–लोक अर्थात् आत्मा एक लोक में रहता है और वह आत्मा का लोक क्या है? आत्मा का लोक यह एक शरीर कहलाता है। इस शरीर में आत्मा वास करता है तो शरीर आत्मा का लोक कहलाता है।

हमारे आचार्यों ने सबसे प्रथम आत्मा को जानने के लिए कहा है। यह कहा है कि हे मानव! यदि तू अग्रणी बनना चाहता है तो अपने को जानना ही तेरा कर्त्तव्य है क्योंकि तेरी अन्तरात्मा में, तेरी अन्तर्हृदय रूपी गुफा में यह आत्मा, आत्मा–चेतना वास करती है और आत्मा–चेतना जिसके कारण यह मानव शरीर चेतनित बना रहता है, यह आत्मा का एक लोक है। इस आत्मा को जानना तेरा कर्त्तव्य है।

आत्मा अणु या विभु?–सांख्य दर्शन ने कहीं आत्मा को अणु स्वीकार किया है, कहीं विभु, हमें इसे विभु ही स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि उसमें उतना ही ज्ञान विज्ञान है, किन्तु अल्पज्ञता अवश्य है।

वास्तव में आत्मा विभु ही है। यदि आत्मा का विज्ञान बुद्धि से परे न होता, तो इसे अणु स्वीकार लेते। आत्मा के विज्ञान को बुद्धि के परे माना गया है। जहाँ बुद्धि से परम अकृत माना गया है तथा ब्रह्म के क्षेत्र में चेतनवत् दोनों माना गया है, वहाँ अकृत होता रहता है।

यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि आत्मा विभु है तो, वह इस शरीर में आने के पश्चात् परमात्मा की भाँति संसार को क्यों नहीं जानता?

इसका उत्तर यह है कि आत्मा विभु तो है परंतु अल्पज्ञता है। यदि अल्पज्ञता न रहती तो यह परमात्मा के क्षेत्र में भी नहीं जा सकता था। यह आत्मा अल्पज्ञ होने से प्रकृति के आवेशों में आता रहता है इसलिए नहीं

करता है। (हिरण्यगर्भ मन्त्र में आये 'स दाधार पृथिवीं द्याम् उत इमाम्' पद का व्याख्यान। धारण से अभिप्राय–बनाता, पालन करता और प्रलय करता है।

जानता। जब यह आत्मा मोक्ष के द्वार पर जाता है तो यह प्रभु के चेतन से चेतनित हो जाता है तथा यह ब्रह्मा बन जाता है, किन्तु परब्रह्म नहीं बनता।

आत्मा (जीव आत्मा) एक शरीर में आने के पश्चात् दूसरे मानव के भावों को क्यों नहीं जानता?

इस प्रश्न का उत्तर सांख्य दर्शन का आचार्य इस प्रकार देता है कि आत्मा में मनोविज्ञान अपने संस्कारों के प्रारब्ध (विपाक) से जकड़ा हुआ है। संस्कारों का ही जगत् है, संस्कारों से ही आवागमन की प्रक्रिया होती है, जब तक आत्मा में आवागमन की प्रक्रिया होती है तब तक यह एक दूसरे के मन के प्रतिभा को नहीं जान पाता। वास्तव में दूसरे के मनों को योगी जानता है। अंतरिक्ष में रमण करने वाले शब्दों को भी योगी अपने में धारण कर लेता है।

आत्मा का महत्व–मानव को सर्वप्रथम अपनी आत्मा को जानने का प्रयास करना चाहिए, जो आत्मा हमारे शरीर में प्रकाश स्वरूप है, जिसके निकल जाने पर हमारा शरीर शून्य हो जाता है, निष्क्रिय बन जाता है। मानव शरीर का मूल्य उसी समय तक है जब तक इस शरीर में यह आत्मा है।

आत्मा के गुण–आत्मा के विशेष गुण हैं, ज्ञान और प्रयत्न। आत्मा में ये दोनों गुण 'ब्रह्मा' बनने पर भी रहते हैं। ज्ञान से वह प्रभु को जान लेता है तथा प्रयत्न से प्रभु में रमण करता हुआ आनन्द ही आनन्द भोगता रहता है।

आत्मा के कर्म–जीव कर्म करने में स्वतंत्र है, किन्तु भोगों में परतंत्र है। स्वतंत्र होकर ही वह नई सृष्टि रचता है, जिसमें मिथ्यता भी होता है। जैसे विभिन्न प्रकार के नाते रिश्ते स्थापित कर लेता है। वास्तव में ये रिश्ते आत्मा के नहीं हैं।

आत्मा का स्वभाव–इस आत्मा के पास जब प्रकृति के गुण अधिक आ जाते हैं, तो उस समय इसमें नाना विकृतियाँ आ जाती हैं। जब इसमें

परमात्मा के गुण आ जाते हैं तो अग्नि (ज्ञान) प्रचंड हो जाती है। उस समय शांति का प्रदर्शन बन जाता है।

आत्मा का भोजन–अन्तरात्मा का भोजन है–आत्म ज्ञान, परम पिता परमात्मा की उपासना, परमात्मा का चिन्तन, वेदों का अध्ययन, ऋण से उऋण होना, यज्ञ करना, देवपूजन करना, एकान्त स्थान में विराजमान हो करके ब्रह्म के ऊपर चिंतन करना और प्राण का आत्मा से मिलान करना आत्मा का सर्वोपरि भोजन माना गया है। ज्ञान–विज्ञान ही आत्मा का भोजन है। आत्मा उसके बिना भूखा रहता है। जो आत्मा को भोजन देने वाले होते हैं, उनके हृदय में विडम्बना (पीड़ा, निराशा) नहीं रहती, उनका मन आवेशों में नहीं आता, जिन आवेशों में मानव को दुःख होता है। आत्मा का भोजन ज्ञान–विज्ञान है, जो उसके साथ इस शरीर को त्यागने के पश्चात् भी जाता है। हमें आत्मा को भोजन देने का प्रयास करना चाहिए।

मन का शोधन–मन को शोधन करना है तो आत्मा को भोजन दो क्योंकि आत्मा के प्रकाश में ही यह मन अपना कार्य कर रहा है। आत्मा जैसा प्रकाश देता है, उसी प्रकाश में मन कार्य करता है। मन तो जड़ पदार्थ है।

आत्मा की प्यास–आत्मा की प्यास दान है।

आत्मा का स्वरूप–महर्षि अंगिरा जी महाराज ने महर्षि आदित्य जी महाराज से आत्मा के स्वरूप के विषय में पूछा तो महर्षि आदित्य जी महाराज ने कहा–आत्मा इतना सूक्ष्म है कि नेत्रों से नहीं देखा जा सकता। भौतिक विज्ञान वेत्ता कितना भी सूक्ष्मदर्शी यंत्र बनाए किन्तु वह इसे नहीं देख सकता। वह इतना सूक्ष्म है कि केश के अगले गोल भाग के 60 भाग किए फिर एक के 99 भाग हो फिर 99 भाग के 60 भाग किए जाएं तो उसमें से एक भाग के बराबर होता है। इसका योगी ही दृष्टिपात कर सकता है।

शरीर में आत्मा का वास–"आत्मा" अन्तरात्मा के अन्दर विद्यंमान् है। अन्तरात्मा हमारी हृदय रूपी गुफा में विद्यमान् है और आत्मा रूपी हृदय में भी एक गुफा है, जिसमें वह चैतन्य देव प्रतिभा रूप में रत्त रहने वाला है।

आत्मा का परिमाप

$$\frac{\dfrac{\text{एक केश की अग्र भाग की गोलाई का माप}}{99 \times 60 \times 99 \times 60}}{3{,}52{,}83{,}600} = \text{आत्मा का परिमाप}$$

एक केश की अग्र भाग की गोलाई का माप
99 x 60 x 99 x 60
एक केश की अग्र भाग की गोलाई का माप
3,52,83,600
= आत्मा का परिमाप

चित्त का परिमाप

एक केश की अग्र भाग की गोलाई का माप
90 x 60 x 99
एक केश की अग्र भाग की गोलाई का माप
5,88,060
= चित्त का परिमाप

आत्मा कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। यह नाना प्रकार की योनियों में कर्मों के तथा संस्कारों के अनुकूल भ्रमण करता रहता है।

आत्माओं की गणना—आत्माओं की संसार में कोई गणना नहीं कर सकता, जैसे परमात्मा की सृष्टि अनंत है, प्रकृति अनंत है, पूर्ण है, ऐसे ही परमात्मा भी पूर्ण है। परमात्मा और प्रकृति के मध्य रहने वाली आत्माओं की गणना अनंत है।

शरीर में प्रवृत्तियों का निर्माण

महर्षि पतंजलि के अनुसार जब मानव शरीर की रचना हो गई तो इसमें विराजमान होने वाला आत्मा आ गया। आत्मा की धारायें—1. ज्ञान, 2. प्रयत्न की चली। इन्हीं दो धाराओं के आधार पर मानव का विकास और पतन होता है।

1. ज्ञान का प्रतिनिधि 'मन', 2. प्रयत्न का प्रतिनिधि 'प्राण' बन गया। ज्ञान के द्वारा कामना की उत्पत्ति हुई, क्योंकि मन का कार्य है कल्पना करना। कामना उत्पन्न हो जाने के पश्चात् प्राणों की पाँच धाराऐं प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान बनी। मन ने इनको कार्य भी सौंप दिया।

(यह मानव शरीर एक सुन्दर महानगंरी है जिसमें पाँच प्राण मन्त्री हैं, अपने—अपने विभाग का कार्य सुचारू रूप से चलाते हैं।)

पाँच प्राणों का कार्य

प्राण–प्राण को नाभि–चक्र तथा घ्राण के द्वारा अन्तरिक्ष से ऊँचे परमाणु लाना तथा अशुद्ध परमाणुओं को दूर ले जाने का कार्य सौंपा है। (प्राण वायु से श्वसन क्रिया संचालित होता है।)

अपान–अपान का सम्बन्ध पृथ्वी से होने के कारण इसको दुर्गन्ध त्यागने का कार्य सौंप दिया। (गुरुत्वाकर्षण शक्ति), उत्सर्जन की क्रिया संचालित होती है।

व्यान–व्यान प्राण को यह कार्य दिया गया कि मानव जो वाक्य उच्चारण करता है, वह रसना के द्वारा करता है, क्योंकि रसना के पिछले विभाग में व्यान है। कण्ठ से ऊपर मस्तिष्क का जितना कार्य है वह व्यान का है। यही मानव शरीर में ज्ञान की उत्पत्ति करता है। इसी के द्वारा ज्ञान की तरंगों को जाना जाता है। एक विवेकी पुरुष जो प्राणों पर संयम करने वाला है वह जानता है कि एक क्षण में ज्ञान की सहस्रों धाराऐं उत्पन्न होती हैं और उन धाराओं का क्या बनता है। यह सब व्यान के द्वारा ही जाना जाता है। (विज्ञान, अन्तरिक्ष एवं प्रसारण का कार्य करता है।)

उदान–उदर में रहता है जो भी अन्न खाते हैं, इन सबको पचा देता है और उनका रस बना देता है जो समान प्राण को दे देता है।

समान प्राण–इस रस को हमारे शरीर की 72,72,10,202 नाड़ियों को पहुँचा देता है। (वितरण करने की शक्ति)

पाँच उपप्राण तथा उनके कार्य

जब आगे और कामनाऐं उत्पन्न हुईं तो पाँच प्राणों के पाँच उपप्राण– 1. नाग, 2. देवदत्त, 3. धनंजय, 4. कूर्म और 5. कृकल बन गये। इनको भी कार्य दिये गये।

नाग प्राण–जब मानव में क्रोध की मात्रा अधिक प्रबल हो जाती है तो मानव नाग प्राण के द्वारा क्रोध से उत्पन्न विष को उगल देता है। अमृत को भस्म कर देता है। इस क्रोध में मानव की अधिक शक्ति नष्ट होती है। नाग प्राण का सम्बन्ध प्राण से है।

देवदत्त–देवदत्त का सम्बन्ध व्यान से है जो ज्ञान की धाराओं में

मिश्रित होता है। इसका सम्बन्ध शरीर में रहते हुए नाना लोक—लोकान्तरों से है।

धनंजय—धनंजय की सुगठितता उदान में रहती है तथा वह उदर में ही भिन्न कार्य करता है।

कूर्म—कूर्म का सम्बन्ध अपान से रहता है।

कृकल—कृकल का सम्बन्ध समान से रहता है।

जब कामना सुचारू रूप से उत्पन्न हो गई तो इन प्राणों का कार्य इन्द्रियों के द्वारा होने लगा। जैसे चक्षुओं का कार्य दृष्टिपात करना है, श्रोत्रों का कार्य शब्द ग्रहण करना है, घ्राण का कार्य गन्ध को पान करना है, त्वचा का कार्य स्पर्श है, रसना का कार्य चन्द्रमा में आस्वादन लेना, उपस्थ का कार्य मल को त्यागना है। ये सब कार्य मन के ज्ञान द्वारा प्राणों को अर्पण कर दिये, शब्द का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से, घ्राण पृथ्वी से तथा चक्षु का सूर्य से है।

मानव को स्थूल बनाना, सूक्ष्म बनाना कूर्म और कृकल दोनों का कार्य है।

यदि हम उदान प्राण से कूर्म और कृकल प्राण का मिलान करना जानते हैं तो सूक्ष्म शरीर बन जाता है, जितना चाहे उतना संकुचित अपने शरीर को हम बना लेते हैं।

प्रकृति की पाँचों गतियों को जानने वाला योगी अपने शरीर को स्थूल रूपों में ला सकता है और अकुंचन के द्वारा सूक्ष्म बना सकता है।

विवेक—विवेक उसे कहा जाता है जो ज्ञान के पश्चात् मानव में मौनपन छा जाता है। विवेक कहते हैं अपनी प्रवृत्तियों पर संयम करने को। अपनी इन्द्रियों के विषय से जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, जब उन पर विजय हो जाती है। अन्तरात्मा में ही उनका दिग्दर्शन करते हैं, हृदय स्थल में ही उनको हम अपने में समाहित होता दृष्टिपात करते हैं तो संसार में मानव का आत्मा उपराम हो जाता है।

(विवेकी पुरुष मन और प्राण दोनों का निरोध कर लेता है। निरोध करके दोनों का घृत बनाकर हृदय रूपी यज्ञ वेदी में उसकी आहुति देता है, आहुति देने पर विवेक की अग्नि ऐसे प्रदीप्त हो जाती है जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं से युक्त हो जाता है।)

चतुर्विध बुद्धियाँ

हमारे यहाँ चार प्रकार की बुद्धियों का विवरण आता है—बुद्धि, मेधा बुद्धि, ऋतम्भरा बुद्धि और प्रज्ञा बुद्धि।

बुद्धि—यथार्थ निर्णय देने वाली है। इन्द्रियाँ जो भी कार्य करती हैं यह सब विषय बुद्धि का है। बुद्धि इनका निर्णयात्मक उत्तर देती है।

जिस सौंदर्य को अपने मन में ले जा रहे हैं, प्रत्येक इन्द्रियाँ उससे दूषित चली जा रही हैं और पाप में डुबकी लगा रही हैं। वह हमारे द्वारा कौन—सी सूक्ष्मता है? वह विवेक की सूक्ष्मता हैं।

मेधा बुद्धि–मेधा बुद्धि उसको कहते हैं जिसके आने के पश्चात् मानव के जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार जागृत हो जाते हैं, मेधा बुद्धि का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से है। यह जो वेद वाणी के वाक्य हैं अन्तरिक्ष में रमण करते हैं, जिस विद्या को हमने किसी काल में पाया परन्तु मेधा बुद्धि प्राप्त होने पर उस विद्या से, उस वेद मन्त्रों से सम्बन्ध हो जाता है और वह स्वतः प्रकट हो जाते हैं, इसका नाम मेधा बुद्धि है। मेधा बुद्धि अन्तरिक्ष में संसार के विज्ञान को देखा करती हैं कि यह संसार का विज्ञान और कौन, कौन–सा वाक्य अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है।

आज तुम्हें स्मरण होगा कि हमने आज से बहुत पूर्व काल में इन संहिताओं का पाठ किया परन्तु इतने काल के पश्चात् भी हमारे स्मरण होती चली जा रही हैं और तुम्हारे समक्ष इन वेद ऋचाओं और संहिताओं का प्रसार करते चले जा रहे हैं, इसका नाम मेधा बुद्धि है। मेधा बुद्धि उस विवेक का नाम है जब मानव संसार से विवेकी होकर परमात्मा के रचाए हुए तत्वों पर विवेकी होकर जाता है।

ऋतम्भरा बुद्धि–बुद्धि का विवेकी और मेधा बुद्धि का विवेकी बन करके परमात्मा के रचाए हुए विज्ञान को जानता हुआ यह आत्मा ऋतम्भरा बुद्धि के द्वार जाता है, ऋतम्भरा बुद्धि उसको कहते हैं जब मानव योगी और जिज्ञासु बनने के लिए और परमात्मा की गोद में जाने के लिए लालायित होता है, उस समय मेधा बुद्धि, ऋतम्भरा बुद्धि बन जाती है, धारणा ध्यान समाधि में संलग्न हो जाता है और संसार के इस प्राकृतिक सौंदर्य को अपने अधीन कर लेता है। यह पाँच प्राण–प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान–ऋतम्भरा बुद्धि वाले के अधीन हो जाते हैं, अधीन करके जब योगी इन पाँचों प्राणों की संधि कर लेता है तो यह आत्मा इन प्राणों पर सवार हो जाता है। जैसे अश्व नाम घोड़े का है और मनुष्य उस पर सवार हो जाता है उसी प्रकार यह आत्मा प्राण रूपी अश्व पर सवार हो जाता है और सबसे पूर्व मूलाधार में रमण करता रहता है।

1. मूलाधार चक्र–मूलाधार में लगभग 6 ग्रन्थियाँ लगी रहती हैं, इस मूलाधार को हम "त्वरित चक्र" भी कहते हैं, जब यह आत्मा मूलाधार में

जाता है तो उस समय यह सब ग्रन्थियाँ स्पष्ट हो जाती हैं और इस आत्मा का प्राणों के सहित आगे को उत्थान होता है। (मूलाधार का स्थान आध्यात्मिक यज्ञ में अवलोकन करें।)

2. नाभि चक्र—आगे यह आत्मा उस स्थान पर जाता है जिसको हम नाभि चक्र तथा मणिपूरक कहते हैं, इसमें 72,72,10,202 नाभि का समूह कहलाता है और लगभग 12 ग्रन्थियाँ स्पष्ट हैं, जब यह आत्मा यहाँ पहुँचता है तो यह सब ग्रन्थियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। (यह नाभि मूल की सीध में पीछे की ओर)

3. हृदय चक्र—इसके पश्चात् आगे देखो, गंगा, यमुना, सरस्वती आ जाती है, आत्मा इसमें स्नान करता हुआ, आगे जाता हुआ "हृदय चक्र" में जाता है जिसको हमारे यहाँ "अनाहत चक्र" भी कहते हैं, इसमें लगभग 24 ग्रन्थियों का समूह माना गया है, सब ग्रन्थियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। (हृदय की सीध में पीछे की ओर)

4. कण्ठ चक्र—आगे यह आत्मा उस स्थान में जाता है, जिसको "कण्ठ चक्र", "उदान चक्र", "विशुद्ध चक्र", "ब्रह्मी" नाम का चक्र भी कहते हैं, इसमें लगभग 47 ग्रन्थियाँ लगी हुई हैं। यह सब ग्रन्थियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। (कण्ठ की सीध में पीछे की ओर)

5. घ्राण चक्र—आगे चलता हुआ यह आत्मा घ्राण चक्र में जाता है जहाँ नाना ग्रन्थियाँ लगी हुई हैं। यह सब ग्रन्थियाँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। इसे "रुद्र चक्र" भी कहते हैं।

6. त्रिवेणी स्थल—आगे चल कर यह आत्मा त्रिवेणी स्थल में जाता है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों का मिलान होता है, घ्राण स्थल से ऊपर मस्तिष्क में देखो, इन तीनों नाड़ियों का समूह होता है, जिनको हमारे ऋषि–मुनियों ने इंगला, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों को गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहा है, जिस स्थान पर इन तीनों नाड़ियों का सम्बन्ध होता है उसको हमारे यहाँ त्रिवेणी या "त्रिवाक् चक्र" कहा जाता है। उस त्रिवेणी स्थान में यह आत्मा प्राणों सहित स्नान करता हुआ आगे को जाता है।

ओ३म् नित्य–हे भगवन्! आप निश्चल अविनाशी होने से नित्य हैं। अनादि काल से हैं और अनन्तकाल तक विद्यमान् रहने वाले हैं। (सत्यार्थप्रकाश प्रथम समु.)

---

7. ब्रह्मरन्ध्र–इसके पश्चात् यह आत्मा ब्रह्मरन्ध्र में चली जाती है, ऋषियों का ऐसा कथन है कि जिस समय यह आत्मा ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचता है तो उस समय सूर्य का प्रकाश भी फीका रहता है, उस प्रकाश के आगे रीढ़ के भाग में जाकर कुण्डली जागृत हो जाती है, जागृत होने का नाम ही देखो परमात्मा से मिलान है, इस आत्मा का परमात्मा से मिलान है। (ब्रह्मरन्ध्र, तालु और कपाल सन्धि के लगभग मध्य में है)

8. इतने प्रबल प्रकाश से आगे चलकर रीढ़ में जाकर जहाँ 'कुण्डली' जागृत हो जाती है। इस कुण्डली के जागृत होने का नाम ही परमात्मा से मिलान हो जाता है।

प्रज्ञा बुद्धि–उच्चारण कर रहे थे बुद्धि, मेधा बुद्धि, ऋतम्भरा बुद्धि और प्रज्ञा बुद्धि के सम्बन्ध में। प्रज्ञा बुद्धि उस ऋषि को प्राप्त होती है जो मुक्ति प्राप्त कर लेता है, आज हमें प्रज्ञा बुद्धि के लिए प्रयत्न करना है, उस ऊँचे शिखर वाले विज्ञान में जाकर हम संसार के ज्ञान, विज्ञान को जान लेते हैं, प्रकृति के एक–एक कण को जान लेते हैं, आज हमें उस विज्ञान की याचना करनी है।

आत्मतत्व में ज्ञान और प्रयत्न दोनों एक सूत्र में सूत्रित हो जाते हैं तो वह परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

ऋषि दयानन्द जी का 'जीवन चरित्र' पृष्ठ–34 (पं. हरिश्चन्द्र विद्यालंकारकृत) लिखित उद्धरण से ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द सत्यान्वेषण में कितनी रुचि रखते थे। उन्होंने शव परीक्षण के आधार पर इन चक्रों को मान्यता नहीं दी है। 'सत्यार्थप्रकाश' के अष्टम समुल्लास में शरीर रचना का जो वर्णन दिया है, उसमें भी आठ चक्रों की चर्चा नहीं है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरेयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

अथर्व 10/2/31

शब्दार्थ–(अष्टाचक्रा) आठ चक्रों वाली (नवद्वारा) नौ द्वारों या छिद्रों वाली (देवानाम्) देवताओं की (अयोध्या) अजेय (पूः) नगरी है। (तस्याम्) उस नगरी में (हिरण्ययः) सम्पूर्ण पदार्थों का प्रकाशक बलधारी (कोशः) शक्तिपुंज, चेतन जीवात्मा (स्वर्गः) स्व सुखस्वरूप परमात्मा या सुख की ओर गतिशील (ज्योतिषा) ज्योतिः स्वरूप ब्रह्म से (आवृतः) ढका हुआ है।

आयुर्वेद शास्त्र की अवधारणा के अनुसार शरीर को जो आठ धातुएँ धारण करती हैं, वे आठ चक्र कहलाती हैं जैसे–

ओ३म् पवित्र—हे भगवन्! आप पवित्र हैं। अविद्या, जन्म, मरण, हर्ष, शोकादि से सदा रहित हैं। (द्रष्टव्य—स पर्यगाच्छुक्रमकाय. पर आये "शुद्ध" पद का व्याख्यान (आर्योभि. द्वि. प्रकाश)

रसो रक्त ततो मांसं देहेमेदोऽस्थि देहिनाम्।
मज्जा वीर्य रजोऽपिवा त्वक्चैवं धारकंमतम्।।

अर्थात्—1. रस, 2. रक्त, 3. मांस, 4. मेद, 5. अस्थि, 6. मज्जा, 7. वीर्य (पुरुषों के शरीर में), रज (स्त्रियों के शरीर में) तथा 8. त्वक् (चर्म) ये ही आठ शरीर का यथावत् धारण करते हैं। मानव जो कुछ भी खाता—पीता है उससे इन आठ तत्वों का निर्माण होकर नस—नाड़ियों के माध्य तथा रक्त संचालन—क्रिया से सम्पूर्ण शरीर में ये तत्व विद्यमान् रहते हैं।

नवद्वारा—शरीर की इस अयोध्या नगरी के नौ द्वार हैं—दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो नासिका छिद्र, एक मुख, एक गुदा तथा एक उपस्थ। मल मूत्र त्यागने के लिए जो दो छिद्र हैं उनसे शरीर संरचना में जो तत्त्व शरीर की स्थिति के लिए अपेक्षित नहीं है, वह तत्त्व इन छिद्रों के द्वारा मल—मूत्र के रूप में बाहर फेंका जाता है। यह शरीर प्रभु की सृष्टि—रचना का एक अद्‌भुत नमूना है जिसके नौ द्वार खुले हैं।

सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में लिखा है कि जो दुष्ट कर्म करता है उसको पेड़—पौधे आदि की योनि में जाना पड़ता है, जबकि जीव के लक्षण "ज्ञान और प्रयत्न" होते हैं, इस सम्बन्ध में सप्त समुल्लास का अवलोकन करें जिसमें "जीव का स्वरूप, जीव और ईश्वर का परस्पर सम्बन्ध" से स्पष्ट हो जाता है कि पेड़—पौधों में आत्मा नहीं होती।

आयुर्वेद का विज्ञानवेत्ता आयुर्वेद की औषध को एकत्रित करता है परन्तु उसमें "आत्मा" नहीं है, उसमें जीवन शक्ति है और जीवन शक्ति प्राण के कारण है। यदि प्राण उसमें नहीं होगा तो जीवन शक्ति भी नहीं होगी। जीवन शक्ति वह, जो सामान्य प्राण है तो हमें प्राप्त होती है।

—ब्रह्मर्षि कृ. महाराज

आत्मा के तीन शरीर

स्थूल शरीर – हमारे शरीर में कुछ सूक्ष्म अग्नि के परमाणु, कुछ जल के, कुछ वायु के तथा कुछ अन्तरिक्ष के परमाणु हैं। इन्हीं से शरीर बना है। पार्थिव तत्व की प्रधानता होने के कारण हम पार्थिव प्राणी कहलाते हैं। सूर्य मंडल में अग्नि प्रधान है, वहाँ आग्नेय शरीर कहलाते हैं। पार्थिव तत्व प्रधानता वाले शरीर में, काम, क्रोध की मात्रा अधिक होती है परन्तु आग्नेय शरीर में ये सूक्ष्म मात्रा में होती है, ज्यों—ज्यों हम अग्नि के समीप चले जायेंगे त्यों—त्यों हमारी उर्ध्वागति होकर तमोगुणी भाव सूक्ष्म हो जाते हैं। स्थूल शरीर चौबीस तत्वों का कहलाता है। इसमें दस प्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार हैं।

सूक्ष्म शरीर – आत्मा के स्थूल शरीर त्यागने पर सत्रह तत्वों का सूक्ष्म शरीर रह जाता है। जिसमें दस प्राण, पाँच तन्मात्रा (वासना) मन और बुद्धि हैं। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृकल ये दस प्राण हैं। गुरुत्व, तरलत्व, तेजोमयी गतिवान और गतिवृति ये पाँच वासना कहलाती हैं। इसमें मानव के जन्म–जन्मांतरों के संस्कार होते हैं।

कारण शरीर – यह आत्मा का मौलिक गुण रह जाता है। 'ज्ञान और प्रयत्न' जब आत्मा सूक्ष्म शरीर के सत्रह तत्वों को भी त्याग देता है, केवल वासना मात्र के रूप में, अपने को वृत्तियों में रत करा करके ये शरीर ज्ञान और प्रयत्न के रूप में परिणित हो जाता है। उस समय यह आत्मा प्रभु का दर्शन करता है, प्रभु के आंगन में प्रवेश कर जाता है, मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण कर लेता है, जहाँ उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है।

बुद्धि – जो यथार्थ निर्णय देने वाली हो। इन्द्रियाँ जो भी कार्य करती हैं यह सब विषय बुद्धि का है। बुद्धि इनका निर्णयात्मक उत्तर देती है।

मन – मन प्रकृति का स्वरूप है। जड़ है, मन का सम्बन्ध कर्म से है और यह कर्मबद्धता जो आत्मा के साथ जब तक रहता है जब तक प्रकृति से मिलान है। परन्तु जब चैतन्य में मिलान हो जाता है तो प्रकृति से आत्मा सम्बन्ध स्वयं छूट जाता है। जैसे गर्भ के पूर्ण परिपक्व हो जाने पर बालक का संबंध पंचम नाम की नाड़ी से स्वयं छूट जाता है।

मन का कार्यकलाप – जब मानव स्वप्नावस्था को प्राप्त होता है तो अंकुर रूपों में संस्कारों के अवशेष मानव शरीर में विराजमान रहते हैं इन्हीं से चित्त के आधार पर आत्मा के प्रकाश में, इस संसार की रचना कर लेता है, नदियों का निर्माण, पति–पत्नी का निर्माण हो जाता है।

मानव की विचारधारा से सूक्ष्म कोई पदार्थ नहीं होता। मन की गति इतनी विशाल है कि एक क्षण में वह नाना प्रकार के भू–मंडलों की परिक्रमा कर लेता है। मन मनुष्यों में घृणा उत्पन्न कर देता है। माता, माता नहीं रहती, पिता, पिता नहीं रहता केवल स्वार्थवाद रह जाता है। मन

ईश्वर का मुख्य नाम एक ओ३म् ही है। शेष नाम गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार ईश्वर के अनेक नाम हैं–विष्णु, शिव, गणेश आदि।

की गति के आधार पर राष्ट्र का विभाजन, गृह का विभाजन हो जाता है, मानव की प्रकृति का विभाजन हो जाता है।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते।।

श्वेताश्वतरोपनिषद्–5/10

शब्दार्थ–(एषः) यह [जीवात्मा] (न) न (एव) ही (स्त्री) स्त्री [लिंग] है (न) न (पुमान्) पुरुष [लिंग] (च) और (न) न (एव) ही (अयम) यह (नपुंसकः) नपुंसक [लिंगी] है। (यद्यत् = यत्+यत्) जिस–जिस (शरीरम्) शरीर को [यह] (आदत्ते) ग्रहण करता है (तेन–तेन) उस उसके साथ (सः) वह [रक्ष्यते] रखा जाता है अर्थात् युक्त हो जाता है।

जीव – जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है वह 'जीव' कहलाता है।
जीव प्रवाह से अनादि – जो कार्य जगत्, जीव के कर्म और जो उनका संयोग–वियोग है, ये तीनों 'परम्परा से अनादि हैं।'
जन्म – शरीर एवं आत्मा का संयोग जन्म है।
मरण – शरीर एवं आत्मा का वियोग मरण है।
स्वर्ग – सुख विशेष–भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति जहाँ हो।
नरक – दुःख विशेष–भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति जहाँ हो, लोक विशेष नहीं, स्थान विशेष है।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज के योगमुद्रा में दिए गए "वैदिक साहित्य परिचय" सम्बन्धित प्रवचनों का संक्षेप में विवरण)

वेद

वेद ईश्वरीय ज्ञान है, जिसमें परमात्मा के ज्ञान—विज्ञान की आभा का हमें दिग्दर्शन होता है।

वेद किसलिये, उन्हें किसने, कब बनाया और उनके नाम क्या हैं?

वेद वह प्रकाश है, जो मानव के अन्तःकरण के अन्धकार को नष्ट करने वाला है। ब्रह्मा [ब्रह्म] नाम परमात्मा का है, वेद ब्रह्मा [ब्रह्म] की वाणी है। वह निराकार से साकार वाणी इस प्रकार आई कि चारों ऋषियों—1. अग्नि, 2. वायु, 3. आदित्य और 4. अंगिरा को ज्ञान था। परमात्मा की सहायता पाकर, परमात्मा का यह ज्ञान इनके द्वारा मनुष्य सृष्टि के आदि में प्रकट हो गया। इस प्रकार यह ब्रह्मा [ब्रह्म] से आया, ऋषि—मुनियों के द्वारा आकर पोथी—रूप में बन गया। ये चार वेद कहलाते हैं—1. ऋग्वेद (ज्ञान काण्ड), 2. यजुर्वेद (कर्मकाण्ड), 3. सामवेद (उपासना काण्ड) तथा 4. अथर्ववेद (विज्ञान काण्ड)।

वेद उन्हीं चार ऋषियों पर क्यों प्रकट हुए?

ये चारों ऋषि इससे पिछली सृष्टि में भी थे, इनके अन्तःकरण में वेदों का ज्ञान था। सृष्टि के आदि में परमात्मा की सहायता पा करके, उन मुक्त आत्माओं ने मानव देह धारण कर मानव जाति के कल्याण हेतु ज्ञान दिया, वही लिपिबद्ध उसी प्रकार चला आता है। (अग्नि, वायु, रवि और अंगिरा से ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था। —ऋ. भाष्य भू. वेदोत्पत्तिविषय)

वेदों में क्या बतलाया गया है?

उस विद्या के ज्ञान—विज्ञान से हमारी आत्मा का कल्याण होता है। राष्ट्र का निर्माण होता है। और हम उसके ज्ञान—विज्ञान से ऋषि परम्परा को स्थापित कर सकते हैं।

वेद की शाखाओं की रचना ऋषियों द्वारा :

जिस ऋषि ने वेद के जिस एक विषय को लिया, उसी की संहिता बन गई।

चारों वेदों की 1127 (ग्यारह सौ सत्ताईस) संहिताएं हैं। जैसे–1. पिप्पलाद–संहिता, 2. रेवक–संहिता, 3. कात्यायनी–संहिता, 4. दालभ्य–संहिता, 5. गौतम–संहिता, 6. कन्या भू–संहिता, 7. पणपेतु–संहिता, 8. शांगति–संहिता, 9. भृगु–संहिता, 10. सोमकेतु–संहिता, 11. ब्राह्माणी संहिता, 12. श्रृंगकेतु–संहिता आदि। इस काल में अधिकतर संहिताएं लुप्त हो चुकी हैं।

वेदों की भाषा :

वेद की भाषा को प्राकृतिक भाषा (वैदिक–भाषा) कहते हैं जो आदि काल में परब्रह्म की प्रेरणा से ऋषियों द्वारा प्रकाश में आई। ऋषियों को जो प्रेरणा मिली, वही लिपिबद्ध हो आगे उसी प्रकार चली आती है।

संस्कृत भाषा :

वेद भाषा से नीचे की जो शृंखला है, उसको हम संस्कृत कहते हैं।

संसार में जितनी वाणियां होती हैं उन सबका सम्बन्ध संस्कृत से होता है। सभी भाष्य संस्कृत से सम्बन्धित होते हैं। रावण ने (प्राकृतिक भाषा) वेद–वाणी का संस्कृत में भाष्य किया था। उसके पश्चात् आगे चलकर संस्कृत लिपिबद्ध मानी जाती है। लिपिबद्ध वह किसी काल में किसी प्रकार की होती है।

देवनागरी का आरम्भ :

पुरातन काल में जो मनुष्य अज्ञान के कारण और विद्या में पारंगत न होने के कारण संस्कृत का उच्चारण नहीं कर सकता था, वह देवनागरी का प्रयोग करता था।

वेदों को ईश्वरीय ज्ञान क्यों कहते हैं?

क्योंकि वेदों में रूढ़ि नहीं होती, जहां रूढ़ि नहीं होती, वही ईश्वरीय ज्ञान होता है। क्योंकि ईश्वर में रूढ़ि नहीं होती, इसलिये उसके ज्ञान में भी रूढ़ि नहीं होती।

(रूढ़ि उसे कहते हैं जिसमें अज्ञान होता है, जिसमें पूर्णता नहीं होती, जिसमें ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा ओत–प्रोत नहीं हो पाती। मानव केवल अज्ञान का आश्रय लेकर अपनी मानवता को नष्ट करना आरम्भ कर देते हैं।)

विराद्–ऋषियों का ऐसा वचन है कि ब्रह्माण्ड में जो गति हो रही है वह शरीर में भी गति हो रही है। शरीर में अग्नि है, पंचमहाभूत हैं और पंचमहाभूतों में यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है।

रूढ़िवाद का कारण :

जब यह अभिमान आ जाता है कि मेरे वाक्यों की पुष्टि नहीं हुई तो वहां रूढ़िवाद छा जाता है। रूढ़िवाद घृणा का केन्द्र है, इसमें संकुचित विचार होते हैं। जहां संकीर्ण विचार और घृणा होती है, वहां बुद्धि का माध्यम नष्ट–भ्रष्ट होता रहता है।

वेद–वाणी अपरिवर्तित है :

वेद–वाणी में कभी परिवर्तन न होने का कारण यह है कि इसका प्रत्येक मन्त्र 'ओ३म्' रूपी धागे से पिरोया है और उसका 'ओ३म्' से सम्बन्ध–विच्छेद नहीं होता। अतः वेद वाणी सदा एक रस रहती है।

सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद है :

संसार की जितनी भी भाषाएं हैं, वे सब वेद मन्त्रों से सम्बन्धित हैं। जो भाषाएं वेद रूपी धागे से पृथक् हो जाती हैं, उनका परिवर्तन होता रहता है। कभी अधिक विस्तृत हो जाती हैं, कभी सूक्ष्म बीज रूप में आ जाती हैं। इन भाषाओं में परिवर्तन होता रहता है। एक दूसरे की भाषा का मिश्रण होकर उनका स्वाभाविक रूप समाप्त होता रहता है।

संक्षेप में सब भाषाएं अंकुर रूप में रहती हैं। उनका मिलान उच्च संस्कृत से रहता है।

त्रिविद्या (वेद) :

निष्कर्ष यह है कि त्रिविद्या (वेद) की चार धाराएं हैं। इन चार धाराओं में तीन प्रकार की विद्याएं हैं–1. ज्ञान, 2. कर्म और 3. उपासना। इनका मन्थन करने के पश्चात् मानव ऊंचा हो जाता है तो उसका नाम विज्ञान है।

विज्ञान दो प्रकार का होता है। 1. भौतिक विज्ञान, 2. आध्यात्मिक विज्ञान।

भौतिक विज्ञान वह है, जिसमें विद्युत् आदि को जानना, नाना यन्त्रालयों का बनाना, सुन्दर भवनों का निर्माण करना, उनमें सुन्दर यन्त्रों का निर्माण आदि आते हैं।

आध्यात्मिक विज्ञान में आत्मा में प्रभु को प्राप्त करना, प्रभु–सृष्टि को

इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा स्थिर किए होता है और मानव जो शरीर है वह सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है, इसको आत्मा स्थिर किए रहता है।

जानना तथा प्रभुत्व को जानना आदि आते हैं। इन दोनों प्रकार के विज्ञान को जानना ही हमारे यहां विज्ञान–काण्ड कहलाया जाता है।

किस–किस वेद का कौन–कौन सा उपवेद :

वेद	उपवेद	
ऋग्वेद	आयुर्वेद	इसमें शरीर की रक्षा और आरोग्य व स्वस्थता के उपाय, औषधि के गुण और बीमारियों का इलाज आदि वर्णन है। आजकल आयुर्वेद के ग्रन्थों में से चरक संहिता और सुश्रुता संहिता प्रसिद्ध हैं।
यजुर्वेद	धनुर्वेद	इसमें धनुष वाण चलाने आदि का सारा विषय है।
सामवेद	गन्धर्ववेद	इसमें संगीत का विषय है।
अथर्ववेद	अर्थवेद	इसमें शिल्पशास्त्र और वास्तुकला का विषय है।

ब्राह्मण ग्रन्थ :

वेदों के व्याख्यान ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ है। वे चार हैं: 1. ऐतरेय, 2. शतपथ, 3. साम, 4. गोपथ।

किस वेद का कौन–सा ब्राह्मण :

वेद	ब्राह्मण
ऋग्वेद	ऐतरेय
यजुर्वेद	शतपथ
सामवेद	साम व ताण्ड्य महाब्राह्मण
अथर्ववेद	गोपथ

इनमें वेदों में आये शब्दों के अर्थ बताए गए हैं तथा यज्ञों में उनका प्रयोग बताया गया है।

वेदांग :

वेदांग 6 हैं और उनके नाम निम्न हैं–1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द तथा 6. ज्योतिष।

ये वेद के अंग हैं, इनके अध्ययन से वेद को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। इन्हीं को दर्शन शास्त्र कहते हैं। शिक्षा–वेद के पढ़ने की विधि को शिक्षा कहते हैं। कल्प–जिसमें सब कर्मों को करने की रीति लिखी है। व्याकरण–जिसमें शब्दों की शुद्धता का ज्ञान हो। निरुक्त–जिसमें वेद के कठिन शब्दों का अर्थ निरुक्त सहित लिखा है। छन्द–जिसमें अक्षरमात्रा–वृत का ज्ञान हो। ज्योतिष–जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमान काल का ज्ञान हो।

वेद के उपांग (दर्शन) :

ये 6 हैं, जिनमें आत्मा, परमात्मा, जगत् की उत्पत्ति और मुक्ति इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया है। ये निम्न हैं :

गौतम मुनि कृत	न्याय–शास्त्र (दर्शन)
कणाद मुनि कृत	वैशेषिक–शास्त्र
कपिल मुनि कृत	सांख्य–शास्त्र

जैसे आत्मा इन पंचमहाभूतों को स्थिर करता है, इनको दृष्टिपात करने का नाम ही विराट् स्वरूप माना गया है। आत्मा का जो प्रकाश है उससे दूसरों को प्रकाशित होने का नाम विराट् स्वरूप है। (ब्र.कृ.महाराज)

पतंजलि मुनि कृत	योग–शास्त्र
जैमिनि मुनि कृत	पूर्वमीमांसा–शास्त्र, पूर्वमीमांसा–जिसमें कर्मकाण्ड का विधान और धर्मधर्मि दो पदार्थों से सब पदार्थों की व्याख्या की है।
वेदव्यास मुनि कृत	उत्तरमीमांसा–शास्त्र व वेदान्त शास्त्र जो कि ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दश उपनिषद्।

इसका यह अभिप्राय है कि जो शाखा शाखान्तर व्याख्या सहित चार वेद, चार उपवेद, छः अंग और छः उपांग हैं, ये सब मिल के चौदह विद्या के ग्रन्थ हैं।–ऋ.भाष्य भूमिका ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्यविषये

उपनिषद् :

उप = समीप, नि = निश्चित रूप से, सीद = बैठना। गुरु के पास बैठ कर ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त करना, वैसे तो आजकल 223 के लगभग उपनिषद् पाई जाती हैं, लेकिन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिन्हें प्रमाणिक एवं पढ़ने योग्य माना है, वे ग्यारह उपनिषद् हैं–

1. ईश, 2. केन, 3. कठ, 4. प्रश्न, 5. मुण्डक, 6. माण्डूक्य, 7. ऐतरेय, 8. तैतिरीय, 6. छान्दोग्य, 10. बृहदारण्यक, 11. श्वेताश्वतर।

इनके ऋषियों ने वेदों और अपने अनुभव के आधार पर ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है जो बड़ा शान्ति देने वाला है।

उस ब्राह्मण भाग का नाम 'पुराण' है जिसमें जगत् की उत्पत्ति का वर्णन है। जो वेद मन्त्रों के अर्थ, अर्थात् जिनमें द्रव्यों के सामर्थ्य का कथन किया है, उसका नाम 'कल्प' है। इसी प्रकार जैसे शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य, जनक, गार्गी, मैत्रेयी आदि की कथाओं का नाम "गाथा" है और जिनमें नर अर्थात् मनुष्य लोगों ने ईश्वर, धर्म आदि पदार्थ विद्याओं और मनुष्यों की प्रशंसा की है, उनको 'नाराशंसी' कहते हैं।

अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी है।

(ऋग् भाष्य भू. वेद संज्ञाविचार)

धर्मशास्त्र और उनमें कौन से प्रमाणिक हैं?

सबसे अधिक प्रामाणिक और मानने योग्य तो वेद ही है। उससे विरुद्ध वचन चाहे किसी भी पुस्तक में पाए जाएं, वे मानने योग्य नहीं हो सकते। पुराने ऋषियों के नाम से धूर्त–स्वार्थी लोगों ने कई पुस्तकें लिख डाली हैं तथा अच्छे ग्रन्थों में भी कई प्रक्षेप व मिलावटें कर डालीं जिनके कारण यह पहचानना कठिन हो गया है कि कौन–सा हिस्सा असली और कौन–सा बनावटी है–तो भी विचारपूर्वक पढ़ने से यह बात मालूम हो सकती है। धर्मशास्त्रों व स्मृतियों में पहला स्थान मनुस्मृति का है जिसे वेद के आधार पर मनु महाराज ने बनाया था, पर इसमें भी समय–समय पर बहुत–सी मिलावटें होती रही हैं, और भगवतादि को यदि ऐतिहासिक नहीं जानना चाहिये क्योंकि उसमें मिथ्याकथा बहुत–सी लिखी हैं। इसलिये प्रक्षेप को छोड़कर वेदानुकूल उसके वचनों को ही मानना चाहिये, औरों को नहीं। वशिष्ठ, गौतम, अत्रि, बौधायन, प्रजापति, हारीत, यम, पराशर आदि के नाम पर भी बहुत–सी (लगभग 65) स्मृतियां आजकल पाई जाती हैं, पर इनकी अच्छी बातें, वेद और बुद्धि के विरुद्ध होने तथा परस्पर विरुद्ध होने

से उनको ऋषिकृत नहीं माना जा सकता, न उन्हें धर्म के विषय में प्रमाण समझा जा सकता है। आपस्तम्ब, पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल, जैमिनी, सांख्यायन आदि कृत गृह सूत्र भी पाये जाते हैं, जिनमें संस्कारों का प्रतिपादन है। इनको भी प्रायः स्मृतियों के नामों से कहा जाता है, वेद–विरुद्ध भाग छोड़कर ये सूत्र–ग्रन्थ संस्कार तथा आश्रम–धर्म आदि के विषय में उपयोगी हैं। वेदों की अधिकतर शाखाएं तथा अन्य बहुत से प्राचीन ग्रन्थ लुप्त प्राय हो चुके हैं।

कर्म व्याख्या

—ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज

कर्म पाँच प्रकार के होते हैं–

1. ऊर्ध्व कर्म (उन्नत करने वाले कर्म)
2. ध्रुव कर्म (पतित करने वाले कर्म)
3. आकुंचन कर्म (संकोच करना)
4. व्यापकता (विस्तारवाद)
5. क्रिया (गमन)

1. **ऊर्ध्व कर्म** — वे कर्म हैं जिनमें जो जैसा है वैसा ही समझा जाता है। सबको सुदृष्टि से देखते हैं तो पवित्रता में परिणत हो जाते हैं। ये हमें ऊपर को ले जाने वाले कर्म होते हैं।

2. **ध्रुव कर्म** — वे कर्म हैं जिनमें मानव में कुवासनाएं होती हैं, मानव अर्थ (धन) के आंगन में रमण करता हुआ अपने मानसिक विचारों तथा आत्मा का हनन करता रहता है। नाना प्रकार के आवेशों में आता हुआ अपने मानसिक और मानवीय तत्त्वों को समाप्त करता रहता है, जैसे किसी को कुदृष्टि से देखना।

3. **आकुंचन कर्म** — यह तीसरा कर्म है। जब रुढ़िवाद में आकर आकुंचन अपनाया जाता है तो अवश्य विनाश हो जाता है, इसमें आकुंचन–शक्ति से बुद्धि का मध्यम बहुत सूक्ष्म और घृणित बन जाता है। जब दूसरों से घृणा करने के वाक्य उसके मस्तिष्क में आने लगते हैं तो ज्ञान की सूक्ष्म–सूक्ष्म नाड़ियां भस्म हो जाती हैं। वह किसी भी वस्तु पर व्यापकता से विचार नहीं करता। गिरते–गिरते यहां तक पहुँच जाता है कि गृह में वह मोह करता है, घृणा करता है तथा क्रोध करता है।

4. **व्यापकता (प्रसारण)** — जीवन में जितनी व्यापकता होती है और जितना विस्तारवाद होता है उतना ही उसका जीवन होता है। इस व्यापकता के न होने पर वह ध्रुव (नीच) कर्मों में संलग्न रहता है।

5. **क्रिया (गमन)** — जो भी हम कार्य करते हैं, वह क्रिया कहलाती है। इस प्रकार पाँच कर्मों में रूढ़िवादी बने या अरूढ़िवादी, यही हमें विचारना चाहिए।

जो न्यायकारी, पक्षपातरहित, सत्य, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी

अति आवश्यक है पुरुषार्थ का अर्थ समझना

पुरुष–विवेकशील प्राणी, अर्थ–लक्ष।

एक विवेकशील प्राणी का लक्ष्य होता है परमात्मा से मिलान। इसके लिए वह जिन उपायों को अपनाता है, वे ही पुरुषार्थ हैं।

पुरुषार्थ के चार अंग–"धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो मनुष्यदेह रूप वृक्ष के चार फल हैं।" (ऋ.भू. ईश्वर प्रार्थना विषय)

"धर्म"–धर्म का स्वरूप–धर्म के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न प्रकार की विचारधाराएं हैं। कोई कहता है कि धारण करने का नाम धर्म कहा जाता है, कोई कहता है कि धर्म वह है कि जो भी हम अपने जीवन में क्रिया–कलाप करे, उसमें धर्म होना चाहिए? जो इन्द्रियों को, मन को प्रियता में लाने वाला हो।

जिस वाक्य को उच्चारण करने में मानव को शंका हो अथवा लज्जा हो, उस वाक्य को उच्चारण करता है वह अधर्म है। जिस वाक्य के उच्चारण करने में न शंका हो, न लज्जा हो और ऊर्ध्वा में एक–सा बना रहता है उसका नाम धर्म कहा जाता है। **अपने कर्त्तव्य का पालन करने का नाम धर्म है** (धारणात्–धर्म उच्यते) धर्म को जीवन में धारण करने पर ही धर्म कहा जाता है।

मानव मात्र का केवल एक ही धर्म है, जिसे वेद कहते हैं। वेद नाम प्रकाश का है, अन्धकार को त्यागकर प्रकाश में जाना ही धर्म माना गया है। 'प्रकाश' प्रकाश नाम सत्य का है, सत्य में ही प्रभु रमण करता है। धर्म **ही मानव का प्रकाश है, 'मानवता को ही धर्म कहते हैं।'**

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः पू.मी.अ. 1 सूक्त 2

ईश्वर ने वेदों में मनुष्यों के लिए जिसके करने की आज्ञा दी है, वही धर्म और जिसके करने की प्रेरणा नहीं की है, वह अधर्म कहलाता है परन्तु वह धर्म अर्थयुक्त, अर्थात् अधर्म का आचरण जो अनर्थ है उससे अलग होता है। इससे धर्म का ही जो आचरण करना है, वही मनुष्यों में मनुष्यपन है।

(ऋ. भाष्य भू. वेदधर्म विषय)

का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहलाता है।

अर्थ—अर्थ का सीधा सम्बन्ध जीवनयापन करने में सहायक भौतिक उपादानों, द्रव्य से है जिनके मूल में धर्मानुकूल अर्थ का सेवन हो, अर्थात् उसी अर्थ को धर्म से पिरोया हुआ होना चाहिए।

काम—मनुष्य रागात्मक प्रवृत्ति का नाम है, काम। मनुष्य के व्यवहार को मर्यादित करने के लिए, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध को स्थायी, सभ्य एवं सुसंस्कृत रूप दिया गया, विवाह द्वारा। मनुष्य की उच्छृंखल कामवासना को मर्यादित किया गया है, काम के लिए वात्स्यायन ने कामसूत्र में कहा है कि वही काम प्रवृत्ति पुरुषार्थ के अन्तर्गत आ सकती है, जो धर्म के अनुरूप हो। कौटिल्य ने कहा है कि व्यक्ति संसार में रहकर सारे ऐश्वर्य प्राप्त करे, उपभोग करे, धन संचय करे किन्तु सब धर्मानुकूल हों। उनके मूल में धर्म का अनुष्ठान हो।

मोक्ष—गीता में कहा है कि धर्म–पूर्ण, काम में ईश्वर विद्यमान् रहता है। इस प्रकार धर्मानुकूल अर्थ व काम का सेवन करने से मनुष्य परम पुरुषार्थ मोक्ष के समीप पहुंचता है।

(मोक्ष का परमानन्द अनिर्वचनीय है। जब आत्मा उस प्रभु की गोद में चला जाता है, तो उस समय उसको परमानन्द प्राप्त हो जाता है। उस आनन्द को आज तक कोई योगी लेखनीबद्ध नहीं कर सका है और न कर सकता है। उस समय वाणी और बुद्धि परमात्मा में लय हो जाती है, इसलिए इसका वर्णन कौन करे। वह आनन्द तथा आत्माओं का विषय, बुद्धि व वाणी का विषय नहीं है, अनुभव का है। जहां आत्मा और परमात्मा का मिलान होता है, दोनों की सन्धि होती है तो इसको मोक्ष कहते हैं।)

एक बार मुक्ति प्राप्त हो जाती है तो वह जीव 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्षों (31,10,40,00,00,00,000) तक जन्म–मरण के बन्धन से छूट कर ब्रह्मानन्द व मोक्षानन्द का ही भोग करता रहता है और नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

अनुष्ठान—अनुष्ठान से अभिप्राय है कि उसको जानना, जिस वस्तु को हम जानना चाहते हैं उसको हम जानें और जान करके उसमें पिपासा रह करके, जिज्ञासा हो जाए उसका नाम अनुष्ठान कहलाता है।

—ब्रह्मऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

वैदिक धर्म के आधार – वेद, स्मृति, सत्पुरुषों के आचार (सदाचार) और अपने आत्मा के ज्ञान के अविरुद्ध, प्रियाचरण, ये चार धर्म के आधार हैं।

मत – मत में कुछ सिद्धान्तों का, जिन्हें किन्हीं व्यक्तियों ने प्रचलित किया हो, भाव आता है और उसके मानने में सम्प्रदायिकता का दोष आता है।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (1.164.46)
एक सत्य को विद्वान् लोग कई प्रकार से प्रस्तुत करते हैं।

संध्या

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी)

सृष्टि के आरम्भ में देवताओं ने ब्रह्मा के चरणों को स्पर्श करते हुए कहा कि भगवन् ! हमारे कल्याण के लिए कोई मार्ग निर्णय कीजिए। उस समय ब्रह्मा जी ने अपने मुख से इस संध्या को उत्पन्न किया और कहा हे देवताओ ! यह जो संध्या मैंने तुम्हारे लिए उत्पन्न की है, इसका अनुसरण करो। इसका अनुसरण करके मनुष्य, ऋषि तथा देवता और देवकन्याऐं दुर्गा बन जाती हैं।

इस सृष्टि की उत्पत्ति कर्म करने के लिए तथा संध्या की उत्पत्ति, मानव को देवता बनाने के लिए हुई है। संध्या रूपी प्रकाश में आने पर आत्मा पर जो 1—मल, 2—विक्षेप तथा 3—आवरण हैं, शान्त हो जाते हैं। मनुष्य का ह्रदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है और उसका कल्याण हो जाता है।

संध्या का नाम दुर्गा भी है। दुर्गा विद्या को कहते हैं। विद्या रूपी दुर्गा का वाहन सिंह रूपी सिंहवाद है, उसी से यह आती है। आठ दिशाओं का ज्ञान ही इसकी आठ भुजायें हैं। दुर्गा पूजा वही कर सकता है, जिसके पास ज्ञान, विद्या और सिंहनाद हो। सिंहनाद वह है जिससे अपराधियों को कुचला जाता है। अज्ञान रूपी शत्रुओं को शांत किया जाता है। प्रथम ह्रदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। संध्या रूपी गंगा हमारे शरीर में बहती है। जिससे ज्ञान का प्रकरण आने पर ह्रदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है।

(संध्या की तीन व्याह्रतियाँ {कार्य व्यापार} होती हैं।)

पहली व्याह्रति

1. इसमें अपने को बनाना है। मैं कौन हूँ, कैसा बनूँ ? मेरे ह्रदय, कण्ठ, चक्षु, श्रोत्र, और घ्राण कैसे बनें ? त्वचा कैसी बने ? इन सब इन्द्रियों के विषयों को जानकर, अपने को परमात्मा में समर्पण कर दो। इसमें इन्द्रियों को पवित्र बनाना है। चक्षुओं में पाप दृष्टि न हो, श्रोत्र दूसरों की निन्दा न सुनें और गुणों को धारण करने वाले बनें। हमारी भुजाओं का यशोबलम् पवित्र हो, हमसे निरापराधी को दण्ड न मिले। यदि हम निरापराधी पर आक्रमण करेंगे, तो दूसरा

हम पर आक्रमण करेगा। हस्त अपराधी को दण्ड देने वाले हों। पद अशुद्ध मार्ग पर न जायें, वे सत्संग में जाएं, **जहाँ दुराचारियों का गुणगान गाया जाता हो, वहाँ न जायें।**

दूसरी व्याहृति

2. कार्य व्यापार में परमात्मा का प्रकरण लेते हैं, उसका गुणगान गाते हैं और कहते हैं कि हे परमात्मा ! अब हम आपके पात्र हैं। प्रभो ! हमारी हिंसक प्राणियों से, जो कष्ट देने वाले हैं रक्षा करो।

तीसरी व्यांहृति

3. प्राणायाम में कहते हैं कि "भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्" कहते हैं कि हे विधाता ! हम प्राणायाम करके समाधि में लय होकर भूः भुवः आदि लोक–लोकान्तरों को जानें तथा उनमें पहुँचें। 'ऋतञ्च सत्यञ्च' हे विधाता ! तू वास्तव में सत्य है, पवित्र है, हम तेरे आँगन में आने योग्य हो गए हैं, पवित्र बन गए हैं। सब आपको समर्पण कर दिया है। इस प्रकार गुणगान गाने के पश्चात् परमात्मा को रक्षक बनाते हैं। **परमात्मा हमारी रक्षा उसी समय करता है, जब हम व्याकुल हो जाते हैं और वैराग्य हो जाता है। केवल परमात्मा का ही ध्यान रहता है।**

वास्तविक संध्या

संध्या के समय मन को एकाग्र करने की विधि यह है कि सर्वप्रथम श्रोत्रा को प्रभु में अर्पण करो। विकल्पों को त्याग कर संकल्पों को धारण करो। इससे मन का विच्छेद हो जाएगा। मन एक संकल्प में लग कर मानव का कल्याण कर देगा। यदि हम आंतरिक भावनाओं द्वारा मोक्ष चाहते हैं, तो हमें मन और प्राण की सन्धि करनी होगी, इसी को संध्या कहते हैं। जिस प्रकार प्रातः तथा सायंकाल सूर्य तथा रात्रि का मिलान है, सन्धि है, **इसी प्रकार जहाँ मन और प्राण दोनों की सन्धि होती है, उसका नाम वास्तविक संध्या है।**

जब मन और प्राण दोनों एक सूत्र में आते हैं तो इन्द्रियों का व्यापार समाप्त हो जाता है और तब मन और प्राण की धारा त्रिकुटी में पहुँचती है वहाँ 'विपाद् झरना' झर रहा होता है।

मन और प्राण दोनों का मिलान करने के पश्चात् द्यु से घृत लिया, चित्तरूपी यज्ञशाला में नाना प्रकार की भ्रान्तियों रूपी समिधा को ब्रह्म–रूपी अग्नि में प्रविष्ट किया। इस प्रकार भ्रान्तियाँ समाप्त हो जाती हैं तथा ब्रह्म एक प्रकार के प्रकाश रूप में दृष्टिपात आने लगता है, अंधकार नहीं रह पाता है।

किन्तु सावधानी यही रखनी है कि मन और प्राण का विभाजन न होने पाए, विभाजन होते ही यह संसार प्रपंच (संसार का जंजाल, भ्रम, धोखा) बन जायेगा। मिलान होने पर संसार से उदासीन होकर धारणा, ध्यान, समाधि में प्रविष्ट हो जायेंगे।

(हमारे नेत्रों के पिछले भाग में एक यंत्र है, जिसको पीला पटल कहते हैं। इस पटल में पञ्च–तन्मात्राएं लगी हैं। तन्मात्राओं के पश्चात् मन है, मन का सम्बन्ध बुद्धि से है, इस प्रकार जो पदार्थ नेत्रों के समक्ष आता है, वह बुद्धि तक पहुँचता है और हम यथार्थ निर्णय लेते हैं।)

"विद्या"–1. जिससे मनुष्य की बुद्धि सहायता पाकर जिसमें ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्य ज्ञान होकर उनसे तथा योग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम "विद्या" है। (आर्योद्देश्यक्रम 16)

2. जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेकर अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सके वह "विद्या" है।

"शिक्षा"–1. जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे, उसको "शिक्षा" कहते हैं। (स्वमन्तव्यं–क्रम 22)

2. जिससे मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सकें वह "शिक्षा" कहलाती है। (व्यवहारभानु)

"ज्ञान"–जिससे मनुष्य की बुद्धि सहायता पाकर संसार के पदार्थों के तत्त्व को जानता है, उसे "ज्ञान" कहते हैं।

1. मल–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि मल हैं।
2. विक्षेप–संशय, सन्देह, अविश्वास इत्यादि विक्षेप पैदा करते हैं।
3. आवरण–मन में प्रलोभन और भय से सम्मोहन पैदा होता है, जो आवरण का काम करता है।

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुः (4.33.5)

नर जो सत्य बोलते हैं वही पालन करते हैं।

जिज्ञासुगण ध्यान दें –

आध्यात्मिक–यज्ञ

–लेखक

आत्म–लोक के सप्त–चक्रों का विषय योगियों का है, फिर भी विषयवती प्रवृति के साधकों को यह जानना अनिवार्य है कि सुषुम्णा का स्थान 'ब्रह्मरन्ध्र' (तालू और कपाल संधि के लगभग मध्य में) से लेकर पीछे नीचे की ओर रीढ़ की अस्थि के अन्तर्गत कमर के पास 'त्रिक्' का केन्द्र स्थान है, यही मूलाधार है।

(पहले सिर से लेकर नीचे की ओर साढ़े पैंतालीस अँगुल माप लें फिर इसी प्रकार नीचे से ऊपर की ओर साढ़े पैंतालीस अँगुल नाप लें। इन दोनों मापों के बीच जो पाँच अँगुल स्थान शेष रहता है, इसे ही मूलाधार कहते हैं, इसी के बन्ध का मूलबन्ध नाम है। शरीर की पूरी लम्बाई अपनी अँगुलियों से मापने पर छियानवें अँगुल होता है, यही शरीर का परिमाण है।)

संध्या के समय मन को एकाग्र करने की विधि – सर्वप्रथम श्रोत्रों को प्रभु में अर्पण करते हुए 'त्रिक्' पर अडिग ध्यान रहे, श्रोत्रों और मूलाधार का एक सूत्र में समन्वय कर आँखों को बन्द कर, अन्तर्मुखी होने पर धाराओं की तरंगें ऊपर की ओर स्वतः ही उठना आरम्भ हो जाती हैं। इस स्थिति में कमर के पीछे की ओर देखते हुए त्रिक् पर अडिग ध्यान रहता है तब मूलाधार श्रोत्र और प्राण (नासिका का अग्र भाग) ये तीनों एक सूत्र में हो जाते हैं जिससे उपासक ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता का चिन्तन करता है तो ब्रह्म एक प्रकार का प्रकाश रूप में दृष्टिंपात आने लगता है, अंधकार नहीं रह पाता। हृदय (दोनों नथनों के मध्य) देश में हृदयरूपी यज्ञशाला में विराजमान आत्मा स्वरूप से प्रकाशित है। जैसे भौतिक यज्ञ में आहुति दी जाती है, इसी प्रकार आध्यात्मिक–यज्ञ में इन्द्रियों के जो विषय अर्थात् समिधा–रूपी चेतनाएं तथा हृदय और मस्तिष्क दोनों के समन्वय करने वाला मन रूपी घृत को "सप्त होताओं" ज्ञानेन्द्रियाँ रूपी सामग्री में रमण कर हृदयरूपी यज्ञशाला में आहुति दी जाती है। प्रदीप्त अग्नि में चेतनाओं में और जागरूकता हो जाती है जिससे हम सूक्ष्म जगत् में चले जाते हैं, उसमें मानव केवल आत्म–स्वरूप बन जाता है। उसमें "आत्मा" केवल सन्निधान–मात्र से दृष्टिपात आता है। आध्यात्मिक–यज्ञ का अर्थ यह है कि जिसमें हमारी आत्मा का विकास हो। जैसे अग्नि ऊपर को उठती है, ऐसे ही आत्मा को ऊपर को उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। 'त्रिक्' से ध्यान हटने पर धाराऐं भी टूटती रहेंगी, दृढ़ संकल्प कर 'त्रिक्' पर अडिग ध्यान रखते हुए ब्रह्म में मग्न हो करके अपनी आत्माओं को नित्य शुद्ध करें।

ब्रह्मज्ञान, पदार्थ का विषय नहीं जो देखा जा सके, यह तो अनुभूति का विषय है। जब दृष्टा, दृश्य एक में लय होते हैं तो वह अनुभूति होती है। (इसके साथ पृष्ठ नं. 44 का अवलोकन करें)

प्रातः जागरण

महर्षि दयानन्द जी ऋग्वेद का भाष्य करते हुए लिखते हैं :–

मनुष्य को प्रति रात्रि के चौथे प्रहर में आलस्य छोड़कर स्फूर्ति से उठकर अज्ञान और दरिद्रता के नाश के लिए प्रयत्न वाले होकर तथा परमेश्वर के ज्ञान और संसारी पदार्थों से उपकार लेने के लिए उत्तम उपाय सदा करने चाहिए।

इसलिए अपनी शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मिक उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को प्रातः ब्रह्ममुहूर्त्त में उठ जाना चाहिए। प्रातः काल उठ कर सबसे पूर्व शुद्ध जल को मुख में भर कर अंगुली से दाँतों और जिह्वा को खूब रगड़–रगड़ कर बिल्कुल साफ कर लेवें। आँखों को भी ठंडे पानी के छींटों से शुद्ध कर डालें। जब मुख, नाक, आँख आदि सम्यक् प्रकार से शुद्ध हो जायें तब शान्त चित्त होकर निम्न मन्त्रों का उच्चारण करें–

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम।।

ऋ.7 । 41 । 1।। यजु. 34 । 34।।

मन्त्रार्थ :– (प्रातः) प्रभात बेला में (अग्निम्) स्वप्रकाश स्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्य युक्त (प्रातः) (मित्रावरूणा) प्राण, उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा का (हवामहे) आह्वान करते हैं अर्थात् उसकी स्तुति करते हैं। (प्रातः) (भगम्) भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रूलाने हारे और सर्व रोगनाशक प्रभु की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं।

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।

ऋ. 7 ।41 ।2।। यजु. 34 ।35।।

विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (1.114.1)

इस क्षेत्र में सभी हृष्ट–पुष्ट तथा नीरोग हों।

मन्त्रार्थ :– (प्रातः) प्रभात बेला में (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) पुत्र रूप सूर्य की उत्पत्ति करने वाले और (यः) जो सूर्यादि लोकों को (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा है उसका हम हृदय से आह्वान करते हैं (आध्रः) जो सब ओर से धारण कर्त्ता (यं चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरः चित्) दुष्टों का भी दण्डदाता और (राजा) सबका प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को मैं (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ और इस प्रकार भगवान परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करता है कि जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूँ, उस तुम मेरी ही उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो जिससे तुम लोग सदा उन्नतिशील रहो इससे (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं।

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।।

ऋ॰ 7।41।3।। यजु॰ 34।36।।

मन्त्रार्थ :– हे (भग) भजनीय स्वरूप (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्य के दाता (सत्यराधः) सत्य धन को देने हारे (भग) सत्याचरण करने हारों को ऐश्वर्य के दाता आप भगवन् ! (इमाम्) इस (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (नः) हमारी (उत्) उत्तमता से (अव) रक्षा कीजिए। हे (भग) प्रभु! आप (गोभि) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राजश्री को (नः) हमारे लिये (प्र जनय) प्रकट कीजिए। हे (भग) प्रभु! आपकी कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों वाले और (नृवन्त) बहुत वीर मनुष्यों वाले (प्र स्याम) अच्छी प्रकार होवें।

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।

ऋ॰ 6।41।4 यजु॰ 34।37।।

मन्त्रार्थ :– हे भगवन् ! आपकी कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्व) उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम) इन दोनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान्

(स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देने हारे (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदयकाल में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान, धार्मिक, आप्त लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा स्थिर [प्रवृत] रहें।

ओ३म भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्वं इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह।।

ऋ.7 |41 |5 यजु. 34 |38 ||

मन्त्रार्थ :– हे (भग) सकलैश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! (तम्) ऐसे (त्वा) आपकी (सर्व+इत्) सभी सज्जन निश्चय करके (जोहवीति) स्तुति करते हैं। (सः) सो आपके (भग) ऐश्वर्यप्रद! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहस्थ आश्रम में (पुरः+एता) अग्रगामी और आगे आगे सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे (भव) होइये और जिससे (भग) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त के दाता होने से आप (एव) ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) होते हैं (तेन) उस हेतू से (देवाःवयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्यसम्पन्न होकर संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत (स्याम) होवें।

जैसे भौतिक–यज्ञ में घृत की आहुति दी जाती है, इसी प्रकार आध्यात्मिक–यज्ञ में 'गो' नाम इन्द्रियों का है। इन्द्रियों के जो विषय अर्थात् चेतनाएं हैं, उनको कटिबद्ध करके मन रूपी घृत में रमण कर दिया जाता है, इनको तन्मय कर दिया जाता है, हृदय–रूपी यज्ञशाला में, जिसको द्यु–लोक माना गया है, इसकी आहुति दी जाती है तो उसी को दर्शन माना जाता है। इसी को 1. मन का दर्शन, 2. आत्म–दर्शन, 3. ब्रह्म–दर्शन, 4. योगिक–दर्शन, 5. द्यु–दर्शन आदि नामों से जाना जाता है। हृदय और मस्तिष्क दोनों के समन्वय करने वाला जो घृत है, उससे प्रदीप्त अग्नि में, चेतनाओं में और जागरूकता होने लगती है जिससे हम सूक्ष्म–जगत् में चले जाते हैं।

स्थूल (शरीर) के सूक्ष्म जगत् में जो एक यज्ञ हो रहा है उसमें मानव केवल आत्म–स्वरूप बन जाता है। उसमें आत्मा–केवल सन्निधान–मात्र से दृष्टिपात आता है। उस समय योगी अपने में ही ऐसा मग्न रहता है कि इस बाह्य–जगत् में उसकी प्रवृत्ति भी उत्पन्न नहीं होती। प्रवृत्ति तो रहती है परन्तु उसका विकास नहीं होता वे सुगन्धि में, उन सूक्ष्म चेतनाओं में इतनी चेतनित हो जाती हैं कि जगत् में आने वाली तरंगों का प्रादुर्भाव सूक्ष्म तथा न होने के तुल्य ही हो जाता है। ये जो ज्ञानेन्द्रियां–दो घ्राण, दो चक्षु, दो श्रोत्र और एक रसना। इन्हें सप्त ऋषि भी कहते हैं। इन सातों अमृतियों के द्वारा जो याग करता है वो सौभाग्यशाली है।
जो सप्त होता, जो सप्तर्षि है, मानों सातों अमृतियों के द्वारा जो यजमान याग करता है, वो सौभाग्यशाली है।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

नैत्यिक—कर्म

ब्रह्ममुहूर्त में उठकर शौच जाने से पूर्व जो पानी पिया जाता है उसका नाम उषःपान है। उषःपान मुख और नासिका दोनों से किया जाता है। जिसका जिससे अभ्यास हो उससे करे।

जलपान करते हुए पठनीय मंत्रः

ओ३म् श्वात्राः पीता भंवत यूयमांपोऽ अस्माकंमन्तरूदरें सुशेवाः। ताऽअस्मभ्यमंयक्ष्माऽअनमीवाऽअनांगसः स्वंदन्तु देवीरमृतांऽऋतावृधंः।।

यजु॰ 41 |12।।

मन्त्रार्थ :— हे प्रभो! (यूयम+आपः) ये जल (पीताः) पिये जाकर (अस्माकम्) हमारे (उदरे+अन्तः) उदर में (श्वात्राः) प्रगतिदाता तथा रक्षक होकर (सुशेवाः) सुखकारक (भवत) होवे, (ताः) ये (ऋतावृध) जीवन यज्ञ के वर्धक (देवीः) दिव्य गुण वाले (अनागसः) शुद्ध जल (अस्मभयम्) हमारे लिए (अयक्ष्माः) यक्ष्मा विनाशक, (अनमीवाः) रोग निवारक (अमृताः) जीवनदायक होकर (स्वदन्तु) स्वाद दे, मीठा लगे।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में उषःपान के बहुत लाभ बताये गये हैं। प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य नित्यप्रति घ्राणेन्द्रिय से शुद्ध जल को पीता है वह बुद्धि सम्पन्न बन जाता है। उसकी नेत्र—ज्योति गिद्ध के समान हा जाती है और उसके बाल भी समय से पूर्व नहीं पकते तथा सिरदर्द, जुकाम, नजला, बवासीर, नेत्र विकार, कब्ज और धातु सम्बन्धी प्रमेह आदि रोगों से सदा मुक्त रहता है।

तत्पश्चात् शौच, दातुनादि से निवृत होकर स्वच्छ व खुले मैदान में व्यायाम करें। व्यायामकालीन मंत्र :

**ओ३म् वर्च आधेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृहणामि शतशारदाय।**

अथर्व॰ 19 |4 |2।।

मन्त्रार्थ :— हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आप व्यायाम द्वारा (मे) मेरे (तन्वाम्) शरीर में (वर्चः) दीप्ति (सहः) सहनशीलता (ओज) तेज, कान्ति (वयः) दीर्घ आयु और (बलम्) बल को धारण कराइए (त्वा) व्यायाम को मैं पुरूषव्यत्ययेन

(इन्द्रियाय) इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने के लिए (कर्मणे) निरन्तर कार्य करने की शक्ति प्राप्त करने हेतु और (वीर्याय) वीर्य, उत्साह व पराक्रम के लिए तथा (शत शारदाय) सौ वर्षो तक दीर्घ जीवन के लिए (प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूँ अर्थात् उपरोक्त शक्तियों को प्राप्त करने हेतु मैं व्यायाम करता हूँ।

व्यायाम करने के पश्चात् शरीर को थोड़ा विश्राम देकर निम्न मंत्रोच्चारण करके अच्छी प्रकार स्नान करें।

स्नान के समय के मंत्र:

ओ३म् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे।।

ऋ॰ 10।9।1।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! ये (आपः) जल (हि) निश्चय ही (मयो भवः) सुख देने वाले (ष्ठा=स्थ) होते हैं (ताः) ये जल (नः) हमारी (ऊर्जे) शक्ति के लिए (महे) बहुत अच्छा, (रणाय) बोलने के लिए तथा (चक्षसे) नेत्रदृष्टि के लिए है, अतः हम लोग इसे (दधातन) धारण करें, सदुपयोग करें।

ओ३म् यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः।।

ऋ॰10।9।2।। अथर्व॰1।5।2।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! यह (यः) जो (व) उन जलों का (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारी (रसः) रस है, वह (उशतीः+मातरः+इव) पुत्रों को दूध पिलाने वाली माताओं के समान, (तस्य) अपने रस का, (इह) इस समय, (नः) हमें भी (भाजयतः) भागी बनाते हैं अर्थात् हम भी उस रस का उपभोग करते हैं।

ओ३म् आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे।

ऋ॰ 10।8।7 अथर्व॰ 1।6।3।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! ये (आपः) जल (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के विस्तार के लिए (वरूथम्) रोग निवारक उत्तम (भेषजम्) औषध को (पृणीत) प्रदान करें (च) और (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यम्) सूर्य को (दृशे) निहारने हेतु नेत्र ज्योति प्रदान करें।

ओ३म् इदमाप प्रवहतावद्यं च मलं च यत्।
यच्चाभिदु द्रोहानृतं यच्च शेपे अभिरूणम्।।

अथर्व 7।7।3।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! यह (आपः) शुद्धिकारक जल (अवद्यम) त्याज्य कर्म (च) और (यत्) जो (मलम्) मल है (इदम) इसको (प्रवहत) बहा दे (च) और (यत्) जो मैं (अनृतम्) व्यर्थ ही किसी धार्मिक से (अभिदुद्रोह) द्रोह करता हूँ – अनिष्ट विचारता हूँ (च) और (यत्) जो (अभीरूणम्) निर्दोष सज्जन व्यक्ति को (शेपे) दुर्वचन बोलता हूँ। इन सब पाप कर्मों से मुझे पृथक् रखें।

ओ३म् शं नः आपो धन्वन्याः३ शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।।

अथर्व॰ 1।6।4।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! (नः) हमारे लिए (धन्वन्याः) मरूस्थलों के (आपः) जल (शम्) कल्याणकारक (सन्तु) हों (उ) और (अनूप्याः) समुद्र तटों प्रदेशों के जल, हमारे लिए (शम्) रोग नाशक हो (खनित्रिमाः) खोद कर निकाले कुएं के (आपः) जल (नः) हमारे लिए सुखकारक हों (उ) और वे भी (शम्) शान्तिप्रद हों (याः) जो (कुम्भे) घड़े में (आ+भृताः) भर कर रखे हैं। (वार्षिकीः) वर्षा से होने वाले जल (नः) हमारे लिए (शिवाः) सुखदायी एवं स्वास्थ्यवर्द्धक (सन्तु) होवे।

सन्ध्या विषयक आवश्यक परिज्ञान

दिन और रात के सन्धिकाल को जो सूर्य नक्षत्र रहित है, उसको तत्त्वज्ञानी "सन्ध्या" कहते हैं, इस प्रकार 24 घंटे में दो ही सन्ध्याकाल आते हैं।

(क) प्रातः सन्ध्या–तारों के लोप होने के समय से सूर्योदय तक।

(ख) सायं सन्ध्या–सायं को सूर्य छिपने से तारों के दर्शन होने तक।

सन्ध्या किस दिशा में बैठकर करनी चाहिए–संस्कार विधि के गृहस्थाश्रम प्रकरण में लिखा है–"शुद्ध देश पवित्रासन पर जिधर से वायु आ रही हो उधर की ओर मुख करके सन्ध्या करनी चाहिए।"

स्नानादि द्वारा बाह्य शरीर की शुद्धि और राग–द्वेषादि के त्याग से भीतर की शुद्धि करके–

प्रतिज्ञा सूत्र त्रय

1. 'मनःसंकल्प' मैं सन्ध्या के लिए इस आसन पर उपस्थित हुआ हूं।
2. सन्ध्या से अन्तःकरण को शुद्ध पवित्र बना कर समाधि पाऊंगा।
3. समाधि से मैं ब्रह्म को प्राप्त करूंगा जो मेरे अन्दर विद्यमान है।

(वेद वाणी अपरिवर्तित है। वेद वाणी में कभी परिवर्तन न होने का कारण यह है कि इसका प्रत्येक 'मंत्र ओ३म्' रूपी धागे से पिरोया है और इसका 'ओ३म्' से सम्बन्ध–विच्छेद नहीं होता। अतः प्रत्येक मंत्र के बोलने से पहले 'ओ३म्' उच्चारण कर बाद में मन्त्र का उच्चारण करें क्योंकि 'ओ३म्' रूपी धागे से मनके रूपी मंत्र के अक्षर पिरोए हुए हैं, जैसे धागे से फूल पिरोए जाने पर फूलमाला कहलाती है।) (ब्र. कृष्णदत्त जी महाराज)

जब–जब वेद का स्वाध्याय प्रारम्भ करें तब–तब प्रथम प्रणव 'ओ३म्' का उच्चारण करें पश्चात् "भूः भुवः स्वः" इन व्याहृतियों को फिर सावित्री गायत्री "तत्सवितु–प्रचोदयात्" का उच्चारण करें तब वेद पाठ आरम्भ करें। (यजु. 36/3)

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संकलित यह सन्ध्या विधि अपूर्व है, इसमें योग के आठों अंगों का समावेश हो गया है। सन्ध्या करने का अर्थ मन्त्र पाठ नहीं है। जैसे योगी लोग योगाभ्यास करते हैं, उसी प्रकार सन्ध्या भी चित्त वृत्तियों को एकाग्र कर अत्यन्त मनोयोग से कीजिए, उनके अर्थों को भी कण्ठस्थ कीजिए। आप अर्थों पर जितना चिन्तन और मनन करोगे, उतना ही सन्ध्या में रस आएगा।

ब्रह्म–यज्ञ का स्वरूप

(सर्वश्रेष्ठ यज्ञ)

ब्रह्म का चिन्तन, ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना, ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्म–यज्ञ है। ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को, यज्ञ कहते हैं इस संसार की रचना को, रचना होकर के यह संसार चल रहा है। एक लोक दूसरे लोक में निहित होकर गति कर रहा है। अग्नि, वायु मिल करके दोनों गति कर रहे हैं। अन्तरिक्ष और ऋत गति कर रहे हैं। यह ब्रह्मांड ऋत और सत् में दृष्टिपात आ रहा है।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

शिखा बन्धन करके आगे लिखा मंत्र बोलकर तीन बार आचमन करें। (यदि शिखा न हो तो शिखा का ध्यान करें।)

आचमन मंत्रः

(देवता=आपः (सर्वव्यापक परमेश्वर)

आचमन विधि–दाहिनी हथेली में उतना ही जल लेना चाहिये जो कण्ठ से नीचे छाती तक पहुंचे, अधिक नहीं।

ओ३म् शन्नों देवीरभिष्टंय आपों भवन्तु पीतयें।
शंयोरभि स्रवन्तु नः।।

यजु॰ 36।12।।

पदच्छेद :– शम्। नः। देवीः।अभिष्टेय। आपः। भवन्तु। पीतये। शयोः। अभि। स्रवन्तु। नः।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से ये (देवीः आपः) दिव्यगुण युक्त जल (अभिष्टये) मनोवांछित आनन्द के लिए और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए अर्थात् प्यास के समय पानी पीने के लिए (नः) हमको (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) हो अर्थात् हमारा कल्याण हो। तथा वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वत्र वृष्टि करें।

भावार्थ :– सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक परमेश्वर हमें मनोवांछित पदार्थ दे और पूर्ण आनन्द मुक्ति भी दे। हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करे। जल के पक्ष में भी यही प्रार्थना है। कि जल दिव्य गुणों वाला है यह भी हमारे अभिष्ट को सिद्ध करने वाला हो। वर्षा सदा ठीक समय पर और उचित परिमाण में हुआ करे।

आचमन का महत्व

(आचमन का महत्व इसलिए माना गया है कि माता के गर्भस्थल में शिशु का जल ही उसका ओढ़ना है, आपो ही उसका आसन है, आपो ही उसके पासे बने हुए हैं।) (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

अंग स्पर्श मंत्रः

(समाधि के साधन)

इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की कृपा से सभी इन्द्रियाँ बलवान् रहें।
विधि : पात्र में से बायें हाथ की हथेली में जल लेकर दायें हाथ की मध्यमा, अनामिका अंगुलियों से जल स्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वाम, निम्नलिखित मंत्रों से इन्द्रियों पर स्पर्श करें। (संस्कार विधि गृहाश्रम)

ओ३म् वाक् वाक्ः।। इससे मुख का दक्षिण व वाम पार्श्व।
ओ३म् प्राणः प्राणः।। इससे दक्षिण और वाम नासिका के छिद्र।
ओ३म् चक्षुः चक्षुः।। इससे दक्षिण और वाम नेत्र।
ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम्।। इससे दक्षिण व वाम श्रोत्र।
ओ३म् नाभिः।। इससे नाभि।
ओ३म् हृदयम्।। इससे हृदय।
ओ३म् कण्ठः।। इससे कण्ठ।
ओ३म् शिरः।। इससे सिर।
ओ३म् बाहुभ्यां–यशोबलम्।। इससे दोनों भुजाओं के मूल स्कन्ध।
ओ३म् करतल, करपृष्ठे।। इससे दोनों हाथों के ऊपर, तले स्पर्श करके दुबारा जल लेकर अंगों का मार्जन करें।

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे भगवन्! आपकी कृपा से मेरी (वाक्–वागित्यादि) वाणी, नासिका, नेत्र, श्रोत्र, नाभि, हृदय, कण्ठ, सिर, दोनो भुजायें और दोनों हाथों के ऊपर नीचे के भाग हृष्ट–पुष्ट, बलवान तथा यश वाले हों।

मार्जन मन्त्र

(साधनों का शोधन)

बाएं हाथ की हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका और अंगूठे से तथा निर्दिष्ट अंगों पर जल छिड़कें। (अपने को समर्पित करना मार्जन कहते हैं। हृदय में जो दुरितन है, विचारों में जो अशुद्धियां आ गई हैं उनको मैं दुरिता [त्यागना] चाहता हूं।) –ब्र. कृष्णदत्त जी महाराज

(बल मात्र से कार्य सिद्ध नहीं होता। मनादि इन्द्रियाँ पवित्र हों तब एकाग्रता होती है। अतः मार्जन का विधान है।)

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि।। शिर पर।

पंचमहायज्ञ विधि में कुशा व हाथ से मार्जन करना लिखा है।

(ओ३म् भूः) हे प्राणों के प्राण भगवन्! आप मेरे (शिरसि) शिर में (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः।। दोनों नेत्रों पर।

(ओ३म् भुवः) हे सब दुखों से पार करने वाले भगवन्! आप मेरे (नेत्रयोः) दोनों नेत्रों में (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे।। कण्ठ पर।

(ओ३म् स्वः) हे सुख स्वरूप तथा अपने उपासकों के प्रति सब सुखों की प्राप्ति कराने हारे भगवन्! आप मेरे (कण्ठे) कण्ठ में (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् महः पुनातु हृदये।। हृदय पर।

(ओ३म् महः) हे पूजनीय तथा सबसे महान भगवन्! आप मेरे (हृदये) हृदय में (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् जनः पुनातुनाभ्याम्।। नाभि पर।

(ओ३म् जनः) हे अखिल जगदुत्पादक प्रभु आप मेरी (नाभ्याम्) नाभि में (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् तपः पुनातु पादयोः।। दोनों पगों पर।

(ओ३म् तपः) हे ज्ञानस्वरूप तथा पापियों के सन्तापकारी भगवन्! आप मेरे (पादयोः) दोनों पैरों में (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि।। मस्तक पर।

(ओ३म् सत्यं) हे अविनाशी भगवन् ! आप मेरे (पुनश्शिरसि) मस्तक को (पुनातु) पवित्रता दें।

ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।।

सब अंगों पर छींटा दें। (ओ३म् खम्) हे सब लोक–लोकान्तरों में व्यापक (ब्रह्म) महान् भगवन् ! आप मेरे (सर्वत्र) सब अंगों में (पुनातु) पवित्रता दें। तत्पश्चात् मन को एकाग्र करने के लिए कम से कम तीन प्राणायाम, निम्न मंत्र जाप करते हुए करें।

इन्द्रियस्पर्श और मार्जन में क्या भेद है?

इन्द्रियस्पर्श मन्त्र में प्रभु से इन्द्रियों की शक्ति बनाये रखने और मार्जन मन्त्र में प्रभु से इन्द्रियों की अपवित्रता और दुर्बलता को दूर करके पवित्रता की प्रार्थना करना है।

प्राणायाम मंत्रः

प्राणों के निरोध करने को प्राणायाम कहते हैं।

(तैत्तिरीय, प्रपा 010 |अनु71)

(शक्ति जागरण)

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्।।

(ओ३म् भूः) हे भगवन् ! आप हमारे प्राण स्वरूप हैं।
(ओ३म् भुवः) हे भगवन् ! आप हमारे दुख हर्त्ता हैं।
(ओ३म् स्वः) हे भगवन् ! आप स्वयं सुख स्वरूप और हमारे सुख दाता हैं।
(ओ३म् महः) हे भगवन् ! आप पूज्य तथा महान् हैं।
(ओ३म् जनः) हे भगवन् ! आप समस्त जगत् के निर्माता हैं।
(ओ३म् तपः) हे भगवन् ! आप ज्ञानस्वरूप तथा पापियों के संतापकारी हैं।
(ओ३म् सत्यम्) हे भगवन् ! आप अविनाशी हैं।

प्राणायाम विधि

'प्राणायाम–मंत्र' का मानसिक जाप करते हुए नाभि के निचले भाग का इच्छाशक्ति से ऊपर संकोच करें अर्थात् मूलबन्ध लगाकर कोष्ठ स्थित प्राण वायु को दोनों नासिका छिद्रों द्वारा बलपूर्वक बाहर निकालने को, यथाशक्ति रोकने को 'प्रश्वास' कहते हैं। तत्पश्चात् धीरे–धीरे भीतर लेकर भीतर थोड़ा सा रोकने पर यह श्वास कहलाता है। यह एक प्राणायाम पूरा हुआ; कम से कम तीन प्राणयाम करें।

नाक को हाथ से पकड़ें बिना ज्ञानपूर्वक श्वास–प्रश्वास की गति को यथाशक्ति रोक देने का नाम 'प्राणायाम' है।

प्राणायाम की शिक्षा किसी अनुभवी से अवश्य सीखें। इस रीति से प्राणायाम करके सृष्टिकर्ता और सृष्टिक्रम पर विचार करें और परमात्मा को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा निश्चित मानकर पाप की ओर अपने मन को कभी न जाने देवें, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्तमान रखें। (संस्कार विधि, गृहाश्रम)

प्राणायाम के लाभ–

1. प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होती हैं। (सत्य. प्र. 3 समु.)

2. इसी प्रकार बारम्बार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाते हैं। प्राण के स्थिर होने से मन, मन स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाती है। इन तीनों के स्थिर होने के समय अपने आत्मा के बीच में जो आनन्दस्वरूप, अन्तर्यामी, व्यापक परमेश्वर है, उसके स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिए। (ऋ.भाष्य भू. उपासना विषयः)

अघमर्षण मंत्रः

(पाप मोचन शक्ति का विकास)

अघमर्षण का अर्थ–अघ=पाप, मर्षण=पापों को नष्ट करना।

अपनी इन्द्रियों और मन को पाप कर्मों से दूर रखना "पाप दूरी करणार्थाः" अर्थात् अघमर्षण मन्त्र आगे होने वाले पापों को दूर हटाने के लिए है।

(देवता – भाववृत्तम् सृष्टिः, उत्पति, स्थिति, प्रलय)

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।

ऋ॰ 10।190।1।।

पदच्छेद :– ऋतम्। च। सत्यम्। च । अभीद्धात्। तपसः। अध्यजायत। ततः। रात्रि। अजायत। ततः। समुद्रः। अर्णवः।

मन्त्रार्थ :– हे परमेश्वर ! आपके (अभीद्धात्) अनन्त (तपसः) सामर्थ्य से (ऋतम्) चैतन्य शक्ति ऋत्, वेद–विद्या (च) और (सत्यम्) अविनाशी प्रकृति कार्यरूप होकर पूर्व कल्पों की भाँति (अध्यजायत) प्रगट हुई। (ततः) आप ही के सामर्थ्य से ब्रह्म दिन और ब्रह्म दिन के पश्चात् अर्थात् जगत् के पश्चात् (रात्रि) प्रलय रूपी रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुई, (ततः) आप ही के सामर्थ्य से (अर्णवः) अन्तरिक्ष में स्थित जल के भंडार की उत्पति के पश्चात् (समुद्रः) पृथ्वी पर स्थित महासमुद्र उत्पन्न हुआ।

यजुर्वेद 14/20 का प्रमाण है कि (अग्निर्देव.) कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञक्रिया में मुख्य करके देवता शब्द से वेद मन्त्रों का ही ग्रहण करते हैं, क्योंकि जो गायत्र्यादि छन्द हैं वे ही देवता कहलाते हैं और इन वेदमन्त्रों से ही सब विद्याओं का प्रकाश भी होता है। इसमें यह कारण है कि जिन–जिन मन्त्रों में अग्नि आदि शब्द हैं, उन–उन मन्त्रों का और उन–उन शब्दों के अर्थों का अग्नि आदि देवता नामों से ग्रहण होता है। मन्त्रों का देवता नाम इसलिए है कि उन्हीं से सब अर्थों का यथावत् प्रकाश होता है।

मन्त्र तीन प्रकार के–प्रत्यक्ष अर्थात् प्रसिद्ध अर्थ के, अप्रत्यक्ष अर्थात् परोक्ष अर्थ के और एक आध्यात्मिक अर्थात् जीव, परमेश्वर और सब पदार्थों के कार्य्य कारण के प्रतिपादन करने वाले हैं।

इससे क्या आया कि त्रिकालस्थ जितने पदार्थ और विद्या हैं, उनके विधान करने वाले मन्त्र ही हैं। इस कारण से इनका नाम देवता है।

–ऋ.भा.भू. वेदविषय विचार

भावार्थ :– इस मन्त्र में यह बताया गया है कि परमात्मा ने किस क्रम से इस जगत् को उत्पन्न किया है। उसी ज्ञानमय, प्रकाशमय, प्रकाशरूप प्रभु ने सबसे पहले ऋत् को, नियम को वेद रूप में प्रकट किया और सत्य को सृष्टि के कारण सत्, रज, तम तीनों गुणों को प्रकट किया। इसके पश्चात् अन्धकार को, समुद्र को और मेघं को बनाया। इसके पश्चात् –

ओ३म् समुद्रादर्णवादधिं संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणिं विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।

ऋ.10 ।190 ।2 ।।

पदच्छेद :– समुद्रात्। अर्णवात्। अधि। संवत्सरः। अजायत। अहोरात्राणि। विदधत्। विश्वस्य। मिषतः। वशी।

मन्त्रार्थ :– (विश्वस्य) समस्त संसार को (मिषतः) अपने सहज स्वभाव से (वशी) वश में रखने वाले भगवन् ! आपने (अर्णवात्) अन्तरिक्ष में स्थित जल के भंडार तथा (समुद्रात्) पृथ्वी पर स्थित समुद्र की उत्पत्ति (अधि) के पश्चात् (संवत्सर) काल के विभाग (अजायत) उत्पन्न कर पूर्व कल्पों की भांति (अहोरात्राणि) वर्ष, दिन और रात्रि (विदधत्) रचे।

भावार्थ :– सकल संसार को अपने वश में रखने वाले परमात्मा ने अपने सहज स्वभाव से जलकोष रचने के अनन्तर, वर्ष, दिन, रात आदि काल के विभाग बनाए। पृथ्वी में घूमने की शक्ति उत्पन्न की। इसके पश्चात् –

ओ३म् सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।

ऋ. 10 ।190 ।3 ।।

पदच्छेद :– सूर्याचन्द्रमसौ। धाता। यथापूर्वम्। अकल्पयत। दिवम्। च। पृथिवीम् च। अन्तरिक्षम्। अथोः। स्वः।

मन्त्रार्थ :– हे (धाता) सब जगत् को धारण और पोषण करने वाले विधाता! आपने (सूर्यचन्द्रमसौ) सूर्य, चन्द्र, (दिवम्) द्युलोक, (पृथिवीम्) पृथ्वी लोक (च) तथा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अथो) और (स्वः) आकाश में परिक्रमा करने वाले सब लोक–लोकान्तरों को (यथापूर्वम्) पूर्व सृष्टि की भांति (अकल्पयत्) रचना की है।

भावार्थ :– सारे जगत् को धारण करने वाले भगवान ने सूर्य, चन्द्र को जैसे पूर्व सृष्टि में रचा था वैसा इस संसार में भी बनाया। द्युलोक, ग्रह–नक्षत्र आदि को पृथिवी, आकाश और अन्य अनेक लोक–लोकान्तरों को भी बनाया। सृष्टि रचना वर्णन करने से ईश्वर की महत्ता पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है, महत्ता ही मनुष्य को भयभीत करके पाप से दूर रखती है। इसलिए यह मन्त्र पापनाशक (अघमर्षण) कहलाता है।

आचमन मंत्र

**ओ३म् शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य आपो॑ भ॒वन्तु पी॒तये॑।
शंयोर॒भि॒स्रवन्तु नः।।**

यजु॰ 36।12।।

मनसा–परिक्रमा मन्त्र
(सर्वव्यापक प्रभु परम रक्षक)

इन मन्त्रों के पाठ के द्वारा मन से ईश्वर की महिमा का चारों ओर ऊपर नीचे दिव्य गुणों का ध्यान किया जाता है, इसलिए इस मन्त्र का नाम मनसा–परिक्रमा अर्थात् मन के द्वारा विचरण करना, मानसिक दृष्टि के द्वारा परिक्रमा करके आत्म–विज्ञान प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य है।

**ओ३म् प्रा॒ची दि॒गग्निरधि॑पतिरसि॒तो र॑क्षि॒तादि॒त्या इष॑वः।
तेभ्यो॒ नमोऽधि॑पतिभ्यो॒ नमो॑ रक्षि॒तृभ्यो॒ नम॒ इषु॑भ्यो॒ नम॑ एभ्यो अस्तु।
यो॑३स्मान् द्वेष्टि यं व॒यं द्वि॒ष्मस्तं वो॒ जम्भे॑ दध्मः।।**

अथर्व॰ 3।27।1।।

पदच्छेद :– प्राची। दिक्। अग्निः। अधिपतिः। असितः। रक्षिता। आदित्यः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः।

मन्त्रार्थ :– हे (अग्निरधिपतिः) सर्वज्ञ परमेश्वर ! आप हमारे सम्मुख (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा की ओर विद्यमान् हो, (असितः) सदा एक रस रहने वाले,

बन्धनरहित, स्वतन्त्र राजा हमारी (रक्षिता) रक्षा करने वाले हैं, आपने (आदित्याः) सूर्य को रचा है जिसके (इषवः) बाणरूपी किरणों द्वारा पृथ्वी पर जीवन रूपी साधन आता है। आपके (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) स्वामित्व गुणों के लिए, आपके रचित पदार्थ जो संसार की (रक्षितृभ्य) रक्षा करते हैं (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) जीवन रूपी प्रदान के लिए, प्रभो! आपको बारम्बार (नमः) नमस्कार (अस्तु) है। (यः) जो अज्ञान–वश (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है अथवा (यम्) जिससे (वयम्) हम (दिष्मः) द्वेष करते हैं।, (तम्) उसे=उस द्वेष भाव को (वः) आपके (जम्भे) न्यायरूपी सामर्थ्य पर (दध्मः) छोड़ देते हैं।

भावार्थ :– पूर्व दिशा में सूर्य उदय होता है। अतः ईश्वर उसी रूप में पूर्व दिशा का स्वामी है। वह हमारे सूर्य के समान ही अन्धकार से, अज्ञान से रक्षा करता है। जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने के साधन किरणें हैं, उसी प्रकार परमपिता के पास हमारे अज्ञान को दूर करने के साधन विद्वान हैं। अतः हम सब का उन स्वामियों को, रक्षा करने वालों को, उनके रक्षा के साधनों को, नमस्कार हो। अन्त में हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे न्यायकारी जो मनुष्य हमसे बैर रखता है अथवा हम किसी के लिए द्वेषभाव धारण किए हुए हैं, उसको आपके ही न्याय पर छोड़ते हैं। परस्पर बदले की भावना के नाश के लिए यह प्रार्थना है क्योंकि यही मनुष्य का सबसे बड़ा अज्ञान है।

[मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के यो३स्मान्द्वेष्टि वाले भाग में आए तीन संख्या प्लुत की द्योतक नहीं है। अतः 'यो' को प्लुत स्वर से अर्थात् लम्बा करके न बोलें।]

**ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।**

अथर्व॰ 3।27।2।।

पदच्छेद :– दक्षिणा। दिक्। इन्द्रः। अधिपतिः। तिरश्चिराजी। रक्षिता। पितरः। इषवः।

मन्त्रार्थ :– हे (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् भगवन्! आप हमारे दाहिनी ओर

(दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा की ओर व्यापक हैं। आप हमारे (अधिपतिः) राजाधिराज और (तिरश्चि) भुजंगादि बिना हड्डी वाले जन्तुओं की (राजी) जो पंक्ति है उनसे हमारी (रक्षिता) रक्षा कराते हैं और (पितरः+इषवः) ज्ञानियों के द्वारा हमें ज्ञान प्रदान कराते हैं शेष पूर्ववत्।

भावार्थ :– हे प्रभो! आप परम ऐश्वर्य के स्वामी हैं, इसलिए आपका नाम इन्द्र है। आपको दक्षिण दिशा का स्वामी माना है। आप सर्वदा ऐसे व्यक्तियों से जो कुटिल हैं और ऐसे जीवों से जो टेढ़े चलते हैं, अत्यन्त विषैले होते हैं, हमारी रक्षा करते हैं। ज्ञानी पुरुषों के उपदेश रूपी विचारों से हमारी रक्षा करने वाले हो। आप हम पर कृपा करें कि हम सदैव विद्वानों के निर्देशन में सत्य मार्ग पर चलते रहें। शेष पूर्ववत्।

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दधमः।

अथर्व. 3।27।3।।

पदच्छेद :– प्रतीची। दिक्। वरुणः। अधिपतिः पृदाकुः। रक्षिता। अन्नम्। इषवः।

मन्त्रार्थ :– हे (वरुणः) अनन्त महानता के भण्डार से युक्त परमेश्वर! आप (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा की ओर है, हमारे (अधिपतिः) महाराज हैं। (पृदाकु) बड़े–बड़े हड्डी वाले और विषधारी जन्तुओं से हमारी (रक्षिताः) रक्षा करते हैं और (अन्नम्) अन्नादि (इषवः) साधनों के द्वारा हमारे जीवन की (रक्षिताः) रक्षा करते हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ :– हे ईश्वर ! आप सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वव्यापक है इसलिए आपका नाम वरुण है। आप पश्चिम दिशा के स्वामी हैं। हमारी पीठ पीछे हमें हानि पहुंचाने वाले व्यक्तियों से तथा कुशब्द करने वालों जीवों से हमारी रक्षा करते हैं। अन्न, औषधि, आप के रक्षा साधन हैं, क्यों कि इन्हीं के द्वारा हमें तेज और नीरोगता प्राप्त होती है। शेष पूर्ववत्।

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। अथर्व. 3।27।4।।

पदच्छेद :– उदीची। दिक् सोमः। अधिपतिः। स्वजः। रक्षिता। अशनिः। इषवः।
मन्त्रार्थ :– हे पिता ! आप हमारे बांयी ओर (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा की ओर व्यापक हैं और हमारे (सोमः) परमेश्वर्ययुक्त (अधिपतिः) स्वामी हैं। आप (स्वजः) स्वयम्भू और (रक्षिता) रक्षक हैं आप ही (अशनिः इषवः) विद्युत द्वारा समस्त संसार के लोक–लोकान्तरों को गति तथा संसार के प्राणी मात्र में रमण कर रूधिर को गति प्रदान करा कर प्राणों की रक्षा करते हैं। शेष पूर्ववत्।
भावाथ :– हे ज्ञान और आनन्दरूप भगवन् आप, इस रूप में उत्तर दिशा के स्वामी हैं अर्थात् हमारे बाई ओर व्यापक हैं। आप स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं और हमारी स्वयमेव उत्पन्न होने वाली बुराईयों से अपनी प्रेरणा शक्ति से और स्वयमेव उत्पन्न होने वाले रोगों से अपने विंद्युत रूप से रक्षा करते हैं। बिजली के प्रयोग से कई रोगों का उपचार होता है और शरीर में भी एक प्रकार की विद्युत शक्ति ही हमारे रूधिर को ठीक–ठीक संचालित कर हमें स्वस्थ रखती है। अतः इस मंत्र में ऐसी प्रार्थना की गई है। शेष पूर्ववत्।

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अथर्व० 3 |27 |5 ||

पदच्छेद :– ध्रुवा। दिक्। विष्णुः। अधिपतिः। कल्माषग्रीवः। रक्षिता। वीरुधः। इषवः।
मन्त्रार्थ :– हे (विष्णुः) सर्वव्यापक प्रभो ! आप (ध्रुवा) नीचे की (दिक्) दिशा की ओर के देशों में विद्यमान् जगत् के (अधिपतिः) स्वामी हैं। आप (कल्माषग्रीवो) हरित रंग वाले वृक्षादि और (वीरुध) लता, बेल आदि के (इषवः) साधन द्वारा हमारे प्राणों की (रक्षिता) रक्षा कराते हैं। शेष पूर्ववत्।
भावार्थ :– हे सर्वव्यापक प्रभो! आप नीचे को स्थिर दिशा पृथिवीतल के स्वामी हैं। वहाँ रह कर आप हमारी हरे भरे वृक्षों तथा अन्नों को उपजा कर उनके द्वारा हमारे जीवन की रक्षा करते हैं। शेष पूर्ववत् –

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अथर्व॰ 3।27।6।।

पदच्छेद :– ऊर्ध्वा। दिक्। बृहस्पतिः। अधिपतिः श्वित्रः। रक्षिता। वर्षम्। इषवः।

मन्त्रार्थ :– हे (बृहस्पतिः) महान प्रभो ! आप (ऊर्ध्वा) ऊपर की (दिक्) दिशा की ओर के लोकों में व्यापक (श्वित्रः) ज्ञानमय [शुद्ध स्वरूप] हमारे (अधिपतिः) स्वामी और (रक्षिता) रक्षक हैं। आप (वर्षम्) वर्षा कराके हमारी कृषि को सींचाते हैं जिससे हमारे जीवन का (इषवः) साधन, खाद्यान्न उत्पन्न होता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ :– हे प्रभो! आप बृहस्पति, सबसे महान्, वाणी अथवा लोक–लोकान्तरों के स्वामी हैं। आप ऊपर की दिशा के अधिराज हैं। वहाँ रह कर अपने शुद्ध रूप से हमें वीर्य, आत्मज्ञान आदि शक्तियाँ देकर श्वेतता देने वाले त्वचा रोगों से बचाते हैं। वर्षा तथा आपका स्नेह जल हमारी रक्षा का साधन है। शेष पूर्ववत्।

परमात्मा के नामों की विशेष व्याख्या–

मनसा परिक्रमा के छः मन्त्रों में परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में परमात्मा के छः नामों का वर्णन है

अग्नि–जो सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम "अग्नि" है।

इन्द्र–जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है, इससे उस परमात्मा का नाम "इन्द्र" है।

वरुण–वह ईश्वर "वरुण" संज्ञक है अथवा परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है, इसलिए उसका नाम "वरुण" है।

सोम–समस्त जगत् का उत्पादक होने से और शान्त्यादि गुणों से परिपूर्ण होने के कारण परमात्मा को "सोम" कहते हैं।

विष्णु–चर और अचर जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम "विष्णु" है।

बृहस्पति–जो बड़ों से बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है, उससे उस परमेश्वर का नाम "बृहस्पति" है।

अधिपति का भाव–

अधिपति का अर्थ है "स्वामी" अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु और बृहस्पति ये सब परमात्मा के दिव्य गुणों से युक्त नाम हैं। "अधिपति" शब्द की विशेषता से स्वामित्व भाव का बोधक है।

"रक्षिता" के गुणों की विशेषता–

स्वामी दयानन्द सरस्वती पंच महायज्ञ विधि में लिखते हैं–"रक्षिता"–जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं।

असितः रक्षिता–असित = बन्धन रहित, रक्षिता = रक्षक परमात्मा, परमात्मा सांसारिक समस्त

बन्धनों से रहित है। स्वयं बन्धन–रहित होने से अपने भक्तों को भी बन्धन से मुक्त करता है। यह भाव ईश्वरीय गुणों का परिचायक है।

तिरश्चिराजी रक्षिता–तिरश्चिराजी = कीट, पतंग वृश्चिक आदि, रक्षिता = परमात्मा रक्षा करने वाला है। ये परमात्मा के बनाए हुए प्राणी सृष्टि कार्य में सहयोग करते हैं।

पृदाकू रक्षिता–पृदाकू = विषधारी प्राणियों से, रक्षिता = ईश्वर रक्षा करने वाला है। रचे हुए विषधारी सर्प आदि सृष्टि में वायु को शुद्ध करते हैं।

स्वजो रक्षिता–स्वजः = अजन्मा प्रभु, रक्षिता = रक्षक है। "अजन्मा" होने से निराकार, निर्विकार और आनन्द स्वरूप है। अपने उपासकजनों को आनन्द देने वाला है।

कल्माषग्रीवो रक्षिता–हरित रंग वाले वृक्षादि, रक्षिता = रक्षक है। ईश्वर की सृष्टि में वृक्ष एवं वन अति उपयोगी हैं। वृक्ष कार्बन डाईऑक्साइड खींचकर आक्सीजन अपने भीतर से छोड़ते हैं, सृष्टि संरक्षण में सहायक हैं और रक्षा के साधन हैं।

श्वित्रो रक्षिता–श्वित्रः = ज्ञानमय प्रभु, रक्षिता = रक्षक है। परमात्मा ज्ञानमय होने से भक्तजनों के अज्ञान को दूर करके ज्ञान प्रदान करता है।

'इषवः' का विशेष भाव–

'इषवः'–परमात्मा के वे साधन और नियम जो श्रेष्ठों की रक्षा करने वाले और पापियों को दण्ड देने वाले हैं।

आदित्या इषवः–प्राण और किरण रक्षा के साधन हैं। सृष्टि में प्राण की महिमा सर्वत्र दिखाई देती है। सूर्य की किरणें प्रकाश और ऊर्जा शक्ति को प्रदान करती हैं। पृथ्वी के संरक्षण और संवर्द्धन में सूर्य की किरणों का मूल महत्त्व है।

पितर इषवः–ज्ञानी जन रक्षा करने वाले हैं। ज्ञानी लोग संसार में अज्ञान को दूर करके ज्ञान की वृद्धि करते हैं। ज्ञान के सदृश इस पृथ्वी पर पवित्र वस्तु दूसरी कोई नहीं है, ऐसा योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है।

अन्न इषवः–पृथ्वी के पदार्थ अन्नादि रक्षा के साधन हैं जिससे प्राणियों के जीवन का भरण–पोषण होता है।

अशनिः इषवः–विद्युत रक्षा का साधन है। वर्तमान युग में विद्युत का प्रभाव एवं उपयोग सर्वत्र दिखाई दे रहा है।

वीरुध इषवः–वृक्ष, लतादि रक्षा के साधन हैं। अनेक प्रकार के रोगों के निवारण एवं उपचार आदि में वृक्ष, लताओं का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है।

वर्षम् इषवः–वर्षा के बिन्दु रक्षा के साधन हैं एवं जीवनदायिनी हैं। वृक्ष अन्नादि की उत्पत्ति जल से ही होती है।

उपस्थान–मन्त्रः
(देवता – सूर्यः, ईश्वर)
(समाधि में प्रवेश)

उपासक उपस्थान के चारों मन्त्रों द्वारा परमात्मा के निकट मैं और मेरे अति निकट प्रभु है, ऐसी प्रेममय विशुद्ध भावना करके उपासना करे। **उपस्थान शब्द का अर्थ**–उप = समीप, स्थान = बैठना अर्थात् अपने

चित्त को शान्त करके प्रभु के समीप बैठा हुआ स्वयं को अनुभव करना "उपस्थान" है।

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्। ।।1।।

यजु॰ 35।14।।

पदच्छेद :– उत्। वयम्। तमसः। परि। स्वः। पश्यन्तः। उत्तरम्। देवम्। देवत्रा। सूर्यम्। अगन्म। ज्योतिः। उत्तमम्।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो ! आप (तमसः) अज्ञान और अंधकार से (परि) परे (स्वः) प्रकाश स्वरुप (उत्तरम्) प्रलय के पश्चात् रहने वाले (देवत्रा) देवों के भी (देवम्) देव अर्थात् सूर्य आदि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, (सूर्यम्) चराचर के आत्मा हैं, सृष्टि नियम को सर्वत्र (पश्यन्तः) निहारते हुए, आपकी रचित दिव्यगुणयुक्त महिमा को जानकर, प्रभो! आपके (उत्तमम्) सबसे उत्तम (ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप को (वयम्) हम (उत्+अगन्म) सत्य को प्राप्त हुए हैं।

भावार्थ :– इस मन्त्र में भगवान की उपासना की है। उपासना की विधि, क्रम भी बताया है। हम सब अज्ञान, अंधकार से परे होकर सर्वप्रथम सांसारिक सुख के साधन, उनके हेतुओं को आत्मा में जाने तब ज्ञान की दूसरी अवस्था में दिव्यगुणों के रक्षक आत्मा को जानें। तत्पश्चात् इस क्रम से संसार में व्यापक सर्वश्रेष्ठ ज्योतिस्वरुप भगवान को प्राप्त करें, क्योंकि वही हमारा वास्तविक उद्देश्य है।

इस मन्त्र में ज्ञान की तीन अवस्थायें (उच्च) प्रकृति, उच्चतर आत्मा, उत्तम (परमात्मा) वर्णित है (अर्थात् पहले हमें प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, फिर आत्मा का और अन्त में परमात्मा का)।

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।।2।।

यजु॰ 33।31।।

पदच्छेद :– उत्। उ। त्यम्। जातवेदसम्। देवम्। वहन्ति। केतवः। दृशे। विश्वाय। सूर्यम्।

मन्त्रार्थ :– हे जगदीश्वर ! (त्यम्) उस=आप (जातवेदसम्) सकल ऐश्वर्य के उत्पादक, आप (देवम्) देवों के भी देव हैं, (सूर्यम्) सब जीव आदि जगत् के प्रकाशक भगवन् ! आप की हम उपासना करते हैं। आपकी दिव्य गुणयुक्त महिमा को (दृशे) दिखाने के लिए संसार (विश्वाय) के समस्त पदार्थ पताका का कार्य करते हैं। जिस प्रकार झण्डियाँ मार्ग दिखलाती हैं। उसी प्रकार (केतवः) सृष्टि–नियम, वेद की श्रुति (उ) निश्चय से (उत्) भली प्रकार (वहन्ति) ईश्वर को जनाते हैं अर्थात् प्रतीति कराते हैं। उस विश्व के आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम सदा उपासना करें अन्य किसी की नहीं।

भावार्थ :– ज्यों–ज्यों हम आगे बढ़ते हैं संसार के पदार्थ तथा वेद आदि ज्ञान हमें उस सत्तात्मक प्रभु का उसी प्रकार ज्ञान करवाते हैं, जिस प्रकार सूर्य की किरणें (प्रकाश) हमें सूर्य का ज्ञान करवाती हैं। भगवान की रचना में ही हम उसके रूप का अनुभव कर सकते हैं।

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष थं सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
स्वाहा।।3।।

यजु॰ 7।42।।

पदच्छेद :– चित्रम्। देवानाम्। उत्। अगात्। अनीकम्। चक्षु। मित्रस्य। वरुणस्य। अग्नेः। आप्रा। द्यावा पृथिवी। अन्तरिक्षम्। सूर्यः। आत्मा। जगतः। तस्थुषः। च। स्वाहा।

मन्त्रार्थ :– हे स्वामिन् ! आप (देवानाम्) विद्वानों और योगाभ्यासियों के हृदय में सदा प्रकाशित रहने वाले हमारे (उदगात्) हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहें। आप (चित्रम्) दिव्य पदार्थों के (अनीकम्) परम बल हैं। (मित्रस्य) राग, द्वेष रहित मनुष्य का, सूर्य–लोक का, प्राण का, (वरुणस्य) श्रेष्ठ गुण कर्मों के स्वभाव वाले मनुष्य का, (अग्निः) भौतिक अग्नि का,

सत्य विद्या का, (चक्षुः) उपदेशक अथवा प्रकाशक हैं। (द्यावा) द्युलोक, (पृथिवी) पृथ्वी लोक, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षादि लोकों को, (आ प्रा=आप्रा) बना के धारण और रक्षण करने वाले हैं। भगवन् ! आप (जगतः) चेतन जगत् (च) और (तस्थुषः) जड़ जगत् के (सूर्यः) उत्पादक (आत्मा) अन्तर्यामी हैं। (स्वाहा) "स्वा वागाह इति वा" वेदवाणी ने ऐसा कहा है। हम मन, वचन और कर्म से सत्य को धारण करें।

भावार्थ :– वह देखिये देवताओं की विचित्र सेना सामने आ गई है। कौन सी सेना ? सूर्य, चन्द्र, तारा, जल, अग्नि, वायु, बिजली आदि प्रकाश देने वाली (भौतिक शक्तियाँ) यह शक्तियाँ ही उस प्रभु की प्रकाशक हैं जिसको वरुण, मित्र, अग्नि के नाम से पुकारते हैं। इन शक्तियों ने द्युलोक, पृथ्वी लोक और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रखा है अर्थात् इन सब में फैली हुई है। यह सूर्य और सबमें समाया हुआ परमात्मा इस जड़ और चेतन जगत् की आत्मा है अर्थात् इसमें बसा हुआ है। जैसे सूर्य के होने से ही जड़, चेतन, प्राणी जीवित रह सकते हैं वैसे परमात्मा की सत्ता भी सबको जीवित रखने के लिए अनिवार्य है। हमारा यह कथन सत्य हो, शुभ हो मंगलकारी हो।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम, शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।4।।

यजु॰ 36।24।।

पदच्छेद :– तत्। चक्षुः। देवहितं। पुरस्तात्। शुक्रम्। उत् चरत्। पश्येम। शरदः शतम्। जीवेम। शरदः शतम्। शृणुयाम। शरदः। शतम्। प्रब्रवाम। शरदः शतम्। अदीनाः। स्याम। शरदः। शतम्। भूयः। च। शरदः। शतात्।

मन्त्रार्थ :– हे भगवन् ! आप (चक्षुः) नेत्र के तुल्य सब के द्रष्टा (पुरस्तात्) अनादि काल से (देवहित) विद्वानों और संसार के हितार्थ (शुक्रम्) शुद्ध ज्योतिस्वरूप (उच्चरत्) उत्कृष्टता से व्यापक अर्थात् सृष्टि के पूर्व, मध्य एवं पश्चात् भी सत्यरूप से सदा एकरस रहने वाले हैं। (तत्) उस पारब्रह्म परमेश्वर को (शरदः शतम्) हम सौ शरद ऋतु पर्यन्त (पश्येम) देखें, (शरदः शतम्) सौ शरद ऋतु पर्यन्त (जीवेम) जीवें (शरदः शतम्) सौ शरद ऋतु पर्यन्त (शृणुयाम) वेद, शास्त्र और मंगल वचनों को सुनें, (शरदः शतम्) सौ शरद ऋतु पर्यन्त (प्रब्रवाम) वेदादि

पढ़ावें और सत्य का व्याख्यान करें। (शरदः शतम्) सौ शरद ऋतु पर्यन्त आयु भर (अदीनाः) पराधीन न (स्याम) हों, यदि योगाभ्यास के (शरदः शतम्) सौ शरद ऋतुओं से भी (भूयः च) अधिक आयु हो तो इसी प्रकार विचरें।

भावार्थ :– उपासना करते–करते साधक को भगवान की शक्ति का अनुभव होने लगा, अपने शरीर में भी उसने शक्ति का अनुभव किया। तब वह कहता है देखो, वह सबको देखने वाला, देवताओं, विद्वानों का हितकारी, प्रेमी, सामने, ऊपर उठता हुआ, शुक्र, तेज, प्रभु का बल हमें प्राप्त हो गया है। अतः इसी के आधार से हम सब सैकड़ों वर्षों तक देखते, जीते, सुनते, बोलते हुए शक्तिशाली होकर रहें, यदि हो सके तो सौ वर्ष से भी अधिक हमारी यह शक्तियाँ बनी रहें। ऐसी हमारी प्रार्थना अथवा भावना है। ब्रह्मचर्य और भगवान की भक्ति ही दीर्घ आयु तथा पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान कर सकती हैं। यही भाव है मन्त्र का।

गायत्री मन्त्र

(प्रियतम का मिलन)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।

यजु॰ 36।3।।

पदच्छेद :– भूः । भुवः। स्वः। तत्। सवितुः। वरेण्यम्। भर्गः । देवस्य। धीमहि। धियः। यः। नः। प्रचोदयात्।।

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) भगवन्! यह आपका मुख्य निज नाम है, इस नाम के साथ आपके सब नाम लग जाते हैं। (भूः) आप प्राणों के भी प्राण हैं, (भुवः) सब दुखों से छुड़ाने हारे, (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति कराने हारे हैं। (सवितुः) सब जगत् की उत्पति करने वाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय कराने हारे भगवन्! आपका जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य, (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा, पवित्र, शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम (धीमहि) धारण करें। (यः) यह जो भगवन्! आप (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम, गुण, कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें। (स्वामी दयानन्द सरस्वती)

समर्पण

[समर्पण में निष्काम कर्म की भावना निहित है, निष्काम कर्म मुक्ति के साधन हैं।]

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयानेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

मन्त्रार्थ :– हे परमेश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से इस जप और उपासना आदि कर्म को करके हमको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों की शीघ्र प्राप्ति हो।

इस मन्त्र में आनन्द रूप भगवान को नमस्कार अर्थात् अपने आपको पूर्णरूप से भगवान के साथ जोड़ दिया गया है। अपने आपको उस मंगलमय को अर्पित कर दिया गया है। इसलिए इस मन्त्र का नाम समर्पण मन्त्र है।

नमस्कार मंत्र

(देवता–रुद्र – दुष्टों को रुलाने वाला ईश्वर)

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च

यजु॰ 16।41।।

मन्त्रार्थ :– (शम्भवाय) कल्याणकारक प्रभो के लिए हमारा (नमः) नमस्कार हो (च) और, (मयोभवाय) सुखकारक प्रभो के लिए हमारा (नमः) नमन हो (च) और, (शंकराय) शान्तिदायक भगवान के लिए हमारा (नमः) प्रणाम हो (च) और, (मयस्कराय) आनन्द देने वाले परमेश्वर के लिए हमारा श्रद्धा और आदर भाव हो (च) और, (शिवाय) अत्यन्त मंगलस्वरूप (च) और (शिवतराय) धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष देने हारे भगवन् ! आपको हमारा (नमः) बारम्बार नमस्कार हो।

भावार्थ :– हे सुख देने वाले, कल्याण के कारण, सुख तथा कल्याण प्रदान करने वाले आपके मंगल तथा उत्कृष्ट कल्याण रूप को मेरा बार बार नमस्कार हो। कल्याण कामना शम् से आरम्भ होकर शम् से ही ये

संध्या समाप्त होती है। क्योंकि सर्वप्रथम मन्त्र शम्+नः शन्नो देवी से प्रारम्भ होता है और यह अन्तिम मन्त्र शिवतराय से समाप्त होता है। अतः सन्ध्या में अथ से इति तक कल्याण की कामना है।

ओ३म् शांतिः। शांतिः।। शांतिः।।।

इति सन्ध्योपासना

इस तीन बार शान्ति पाठ का प्रयोजन यह है कि संसार में जो दुःख हैं उनकी निवृत्ति हो जाए, वे तीन प्रकार के दुःख हैं।

दुःख – जिससे पीड़ित होकर प्राणी उससे बचने का प्रयत्न करता है उसको दुःख कहते हैं।

(क) आध्यात्मिक – शारीरिक दुःखों को "आध्यात्मिक दुःख" कहा जाता है। शारीरिक–वात, पित्त, कफ के प्रकुपित होने अथवा आहारादि के वैषम्य से ज्वार पीड़ादि का होना "शारीरिक दुःख" कहा जाता है।

(ख) आधिभौतिक – चोर, शत्रु, सर्पादि दूसरे प्राणियों से होने वाले दुःखों को "आधिभौतिक दुःख" कहा जाता है।

(ग) आधिदैविक – "देव" शब्द का अर्थ सूर्यादि देव हैं। सूर्यादि देव के द्वारा अतिवृष्टि, अतिउष्णता,– लूं लगना, बिजली गिरना और मनादि इन्द्रियों की अशान्ति से (विकार से) जो दुःख प्राप्त होता है उसको आधिदैविक दुःख कहते हैं।

सुख – "आनन्द का नाम सुख है।" सत्यार्थ प्रकाश ३रा समु.)

उपासना – जिससे ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है, उसको उपासना कहते हैं। (आर्योद्देश्यरत्नमाला) उप = समीप, आसन = बैठना। उपस्थान की स्थिति हो जाने पर उपासना आरम्भ हो जाती है। तब उपासक उपासना के अन्दर प्रभु के आनन्द सागर में निमग्न हो जाता है।

गायत्री महामन्त्र के अर्थ पर विचार करना चाहिये। इस महामन्त्र के द्वारा सारे विश्व को उत्पन्न करने वाले परमात्मा का जो उत्तम तेज है, उसका ध्यान करने से बुद्धि की मलीनता दूर हो जाती है और धर्माचरण में श्रद्धा और योग्यता उत्पन्न होती है। दूसरे किसी मत में प्रार्थना के मन्त्रों की ऐसी गहराई और सच्चाई नहीं है।
–महर्षि दयानन्द सरस्वती

देव याग

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

द्वितीय याग को **'देव पूजा'** कहा जाता है, जिसे देव यज्ञ कहते हैं। हमारे यहाँ दो प्रकार के देवता कहलाते हैं, एक देवता जड़ हैं और दूसरे देवता चैतन्य होते हैं। जड़ देवता, ये पंचमहाभूत हैं। पंच महाभूतों में उसकी रचना है। जैसे सूर्य, चन्द्रमा और नाना नक्षत्र, ये हमारे देवता हैं, ये देते रहते हैं। चन्द्रमा सोम–अमृत प्रदान करता है। सूर्य हमें तेज देता है, जीवन देता है, ओज देता है, तेज की स्थापना करता है। पृथ्वी हमें सुगन्धि देती है, जल हमें अमृत देता है और रस देता है। तेज हमें वायु को प्रदान करती है। वायु हमें प्राण देता है और अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। यह कितना सुन्दर यज्ञ मेरे उस देव का स्वतः ही हो रहा है। जो मानव वाक्य उच्चारण करता है, वायु उसे प्रसारित करती है।

वह देव पूजा है, देव पूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देव पूजा करें ? पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, **उनको क्रिया में लाना यह यज्ञ है,** इसको करना हमारा कर्तव्य है। यज्ञ में जाना हमारा देवत्व पूजन है, यह देव–पूजा कहलाती है।

पञ्चभूताभा में याग

इसमें ही द्वितीय प्रकार का यज्ञ है। हमें अग्नि को सुगन्धि देना है, हम जितना लेते हैं, दुर्गन्धि के बदले सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बना करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जायें, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊँचा बने। ये पाँच प्रकार की आभायें कहलाती हैं।

पञ्चभूत याग से ब्रह्मगति

जब यजमान यज्ञशाला में विराजमान होता है तो पुरोहित यही कहता है कि हे यजमान – **'पंचमहाभूतानि ब्रह्मलोकः'** यह ब्रह्मलोक में ले जाती है, इन पंचमहाभूतों को जानने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में चला जाता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि पाँचों प्रकार के महाभूतों को जानने वाला

प्राणी ब्रह्मलोक में चला जाता है। अब जब वेद का मन्त्र, वेद का ऋषि ऐसा कहते हैं तो उसमें एक आश्चर्य आता है कि ऐसा वेद का ऋषि क्यों कह रहा है ? आगे जब एक वेद का मन्त्र आया 'पंच भूत प्रभे वृताः' अब जब वेद का यह मन्त्र स्मरण आया तो इसमें कुछ और दृष्टिपात आने लगा। जब इस वेद मन्त्र का विभाजन किया, विभक्त करके इसका सन्धिपात किया गया तो इसमें क्या–क्या निकला ? इसमें यही आया कि पंचभूत पाँचों मनके हैं और ये पाँचों मनके एक ऋत् में पिरोये हुए हैं और वह जो ऋत् और सत् है वह 'ओ३म्' रूपी धागे में पिरोये हुए हैं। जब 'ओ३म्' रूपी धागे को जाना जाता है, उस सूत्र को जानने वाले को ब्रह्म ही ब्रह्म सदैव दृष्टिपात आता है और वही ब्रह्म कहलाता है।

चैतन्य–देव पूजा

यह हमारे यहाँ पंच–महाभूतों की प्रतिक्रियाएं, हमारे यहाँ देव–यज्ञ कहलाया है और देव–पूजा, इन पंच महाभूतों को जनाता है, ये जड़ देवता हैं। परन्तु एक देवता हमारे यहाँ चैतन्य देवता है। ब्राह्मण, देखो, वेद का पठन–पाठन करने वाला उसको हम पुरोहित भी कहते हैं, उसे परा–विद्या को जानने वाला भी कहते हैं, जो ब्रह्म के निकट चला गया है। हमारा यजमान कहता है यज्ञशाला में, हे पुरोहितो! आओ, मेरे यज्ञ को पूर्ण करा करके, मुझे परा–विद्या में ले जाओ, मैं इस संसार से उपराम होना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की आभायें स्मरण आती रहती हैं तो वह ज्ञान और विज्ञान मानव को ऊर्ध्वा में ले जाता है। उसके पश्चात् यह 'पुरोहितं ब्रह्मे' यह चैतन्य पुरोहित कहलाते हैं यह 'प्रतिम् ब्रह्मे', देखो, पुरोहित के द्वारा यज्ञ होता रहता है। यज्ञ का अभिप्रायः है कि मानव को अच्छाइयों में परिणित होना है, सुन्दर धाराओं को, धर्म के मर्म को जानना है, देव पूजा करना है, उनको सुगन्धित करना यह यज्ञ कहलाता है। जहाँ यह यज्ञ है, उसको देव–यज्ञ कहते हैं, जहाँ दोनों चैतन्य और जड़ देवताओं की पूजा होती है। पूजा का अर्थ है, उनको सदुपयोग में लाने का नाम पूजा कहलाता है।

जड़ – जो वस्तु ज्ञानादि से रहित है, उसे 'जड़' कहते हैं।
चेतन – जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है, उसको 'चेतन' कहते हैं।
चैतन्य देव – जो दूसरों को विद्या, ज्ञान, धन, जीवन आदि से उपकार करते हैं। जो दिव्य गुण वाले होते हैं, उन सबको 'देव' कहते हैं।

अश्रद्धाम् अनृते अदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः। (19.77)
प्रजापति ने अश्रद्धा को असत्य में श्रद्धा को सत्य में रखा है।

देवयज्ञ

(अग्निहोत्र विषयक आवश्यक परिज्ञान)

अग्निहोत्र का अर्थ – जिससे कर्म में अग्नि व परमेश्वर के लिए जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा पालन करने के अर्थ होत्र–हवन अर्थात् दान करते हैं, उसे "अग्नि–होत्र" कहते हैं। (ऋ॰ भा॰ भू॰ यज्ञ विषय)

याग् – याग् का अभिप्राय यह है कि जितने भी सुक्रियाकलाप हैं, सुकर्म है, आत्मीय प्रसन्नता वाले जितने भी क्रियाकलाप हैं उन सर्वत्र का नाम एक "याग" माना गया है। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

"जहाँ अग्नि के मुखारबिन्द में" 'स्वाहा' कहते हैं, अग्नि परमाणुओं का विभाजन कर देती है। अग्नि का यह सर्वोपरि गुण माना गया है, जो भी साकल्य प्रदान कर रहे हों "स्वाहा" उच्चारण कर रहे हैं, उसका सूक्ष्म रूप बनकर के वे वायुमंडल में प्रवेश करा देते हैं। यदि खिन्नता आ जाती है तो वही विचार भू–लोक में प्राप्त हो जाते हैं। जब साधना में प्रवेश होना चाहते हैं, साधक बनना चाहते हैं, उसे वहाँ का वायुमंडल बनना होगा, वहाँ का वायुमंडल विचारों के साकल्य के द्वारा हूत् से अग्नि के द्वारा उस पवित्र परमाणुवाद का बिखेरना होगा।

स्वाहा शब्द की महत्ता – यजमान यदि मन, कर्म, वचन एकाग्र होकर 'स्वाहा' बोल करके आहुति देता है तो उसका प्राण 'स्वाहा' के साथ में गमन करता है। यही 'स्वाहा' वाणी की ध्वनि बन करके अग्नि की धाराओं पर विद्यमान् होकर के यही जो शब्द है, वह उसका आकार बन करके यही द्यु–लोक में प्रवेश कर जाता है। वह जो द्यु–लोक है, जहाँ से सूर्य ऊर्जा लेता है, जहाँ से चन्द्रमा अमृत लेता है, जहाँ से अग्नि का पुंज बन करके एक प्रकाश में रत हो जाता है। तो वह जो महान् द्यु–लोक है, जहाँ हमारा शब्द उसमें लय हो जाता है, वह द्यु–लोक में प्रवेश कर जाता है और समय–समय पर वही शब्द द्यु–लोक से आ करके मानव के क्रियाकलाप में वह परिणत हो जाता है। अरे मानव! इस ब्रह्माण्ड को तू जैसा देना चाहता है, वैसा ही तुझे प्राप्त होगा। यदि देवत्व देना चाहता,

द्यु–लोक में प्रवेश करना चाहता है, तो द्यु–लोक तुझे प्राप्त होगा। यदि तुम मानव वृत्तियों में रहना चाहते हो, तो वही तुझे प्राप्त होगा, समय–समय पर वही संस्कार बन करके तुम्हारे अन्तःकरण में एक प्रादुर्भाव हो करके तुम्हारा जीवन एक महान् बनता रहेगा। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

याग की आत्मा 'स्वाहा' – यह जो यज्ञ है यह आत्मा का शरीर है और मानो देखो जो आत्म तत्त्व है, शरीर से जो यजमान 'स्वाहा' कहता है वह 'यज्ञ की आत्मा' माना गया है। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

याग के प्राण – 'इदन्न मम। (शतपथ ब्राह्मण)

यज्ञ स्थल – यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहाँ स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो। (संस्कारविधि सामान्य प्रकरण)

स्वाहा – स्वाहा का अर्थ ब्रह्म यज्ञ के उपस्थान में देखें।

यज्ञ की समिधा – ढाक, आम्र, पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर और बिल्व आदि की समिधा परन्तु ये समिधा कीड़े लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हो तथा बक्कलरहित हो। (संस्कार सामान्य प्रकरण)

होम–आहुति की मात्रा – छः–छः मासे भर घृत व सामग्री, एक–एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून होना चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। हवन सामग्री ऋतु अनुकूल हो। (सत्यार्थ. तीसरा समु.)

यज्ञशाला – इसी को 'यज्ञमंडप' भी कहते हैं। यह अधिक से अधिक 16 हाथ सम चौरस चौ–कोण और न्यून से न्यून 8 हाथ की हो। यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथ्वी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथ्वी दो–दो हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उसमें शुद्ध मिट्टी भरें। यदि 16 हाथ की हो तो 12 खम्भे लगाकर छाया भी करें।

यह छाया की छत वेदी की मेखला से 10 हाथ ऊँची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा –पताका पल्लव आदि बांधें। नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुङ्कुम, हल्दी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गल कार्यों में अपन और पराये कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें। (संस्कार.सा.प्र.)

यज्ञशाला का निर्माण क्यों ? – यज्ञशाला बनाने का प्रयोजन यह

है कि जिससे अग्नि की ज्वाला में वायु अत्यन्त न लगे और वेदी में कोई पक्षी किंवा उनकी बीठ भी न गिरे। (ऋ.भू. भाष्य भूमिका वेद विषय)

यज्ञशाला में कुश का होना आवश्यक – यज्ञशाला में कुश रखना चाहिए। इसका प्रयोजन यह है कि "यज्ञशाला का मार्जन हो और चिंवटी आदि कोई जन्तु वेदी की ओर अग्नि में न गिरने पावे।" (ऋ. भू. वेदविषय)

यज्ञकुण्ड का परिमाण – लक्ष आहुति हेतु चार–चार हाथ की चारों ओर समचौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहरा और तले में एक–एक हाथ चौकोण लम्बा–चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुतियाँ करनी हों उतना ही गहरा और चौड़ा कुण्ड बनाना।

(अन्यत्र यज्ञकुण्ड के परिमाण के लिए 'सत्यार्थ. तीसरा समु. द्रष्टव्य')

यज्ञकुण्ड किस धातु का हो ? – अग्निहोत्र के लिए ताम्र या मिट्टी की वेदी बनायें। (ऋ.भू.पंचमहायज्ञ)

यज्ञ के पात्र – **चमचा** – जिसकी डण्डी सोलह अङ्गुल और उसके अग्रभाग में अंगूठा की यवरेखा के प्रमाण से लम्बा, चौड़ा आचमनी के समान बनवा लें। सो भी सोना, चाँदी व पलाशादि लकड़ी का हो। **प्रोक्षणी**– हाथ धोने के लिए, **आचमनी**– आचमन हेतु, **आज्यास्थाली**– घी का पात्र, **प्रणीता**– जल हेतु पंखा, चमचा आदि आवश्यक वस्तुऐं अवश्य रखनी चाहिए।

किन्तु पात्र रखने विषयक जो बातें ध्यातव्य हैं सो महर्षि दयानन्द जी के ही शब्दों में लीजिए –**"परन्तु इस प्रकार से प्रणीता पात्र रखने से पुण्य और इस प्रकार रखने से पाप होता है, इत्यादि कल्पना मिथ्या ही है, परन्तु जिस प्रकार करने में यज्ञ का कार्य अच्छा बने, वही करना आवश्यक है, अन्य नहीं।"** (ऋ.भू. वेदविषय, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट पृष्ठ 44)

अग्निहोत्र का समय – दिन रात की दो सन्धि बेला के अनुसार दोनों कालों में किया जाता है। तथापि अग्निहोत्र के लिए प्रातः–सायं दोनों समयों की आहुति एक संमय में भी देने का विधान किया है –

"अग्नि को प्रज्वल्लित करके, पूर्वोक्त पदार्थों का प्रातःकाल और सायंकाल अथवा प्रातःकाल ही नित्य होम करें।" (यज्ञ प्रातः सन्ध्या के पश्चात् और सायं सूर्यास्त से पहले करना चाहिए।) (ऋ.भू.पंचमहायज्ञ विषय)

दैनिक अग्नि होत्र में प्रातः सायं की सोलह–सोलह आहुति – दो आघारावाज्य, दो आज्य भाग, चार प्रातःकाल, चार भूरग्नेय प्राणाय, चार अग्नेनय सुपथा, और इसी प्रकार सायंकाल–दो आघारावाज्य, दो आज्य भाग, चार सायंकाल, चार भूरग्नेय प्राणाय, चार अग्नेनय सुपथा आहुतियाँ देवें। (सत्यार्थ॰ तीसरा समु॰)

प्रश्न – मन्त्र पढ़ कर होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर – मन्त्रों में व्याख्यान है कि जिससे होम करने का लाभ विदित हो जाये और मन्त्रों की आहुति होने से कण्ठस्थ रहे। (सत्यार्थ॰ तीसरा समु॰)

पति अथवा पत्नी द्वारा यजमान का बनना– यजमान गृहस्थ हों और यज्ञ के समय पति पत्नी विद्यमान् हो तो दोनों साथ–साथ बैठें अन्यथा केवल पुरुष या महिला ही यजमान बनकर आहुति दे सकते हैं। अर्थात् एक-एक मन्त्र को दो–दो बार पढ़कर दो–दो आहुतियाँ दें। पति पत्नी दोनों मे से किसी एक का वियोग (देहान्त) हो जाये तो भी यजमान अकेला ही हो सकता है। (टिप्पणी–गृहाश्रम प्रकरणम्)

यजमान पत्नी का आसन – यद्यपि यज्ञ कर्म में पत्नी का आसन प्रायः पति के दक्षिण अर्थात् दाहिनी ओर होता है तथापि गर्भाधान, नामकरण और निष्क्रमण में पत्नी का आसन बाईं ओर होगा इसके अतिरिक्त अभिषेक और ब्राह्मण के चरण धोने के समय भी पत्नी पति के बाईं ओर होगी। (संस्कार विधि, संस्कार रत्नमाला, 87 व्याघ्रपाद स्मृति 84)

यजमान पत्नी का आसन दक्षिण भाग में क्यों ?

यज्ञ के समय में पति–पत्नी को ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना आवश्यक है। पति–पत्नी भावना को हटाए बिना ब्रह्मचर्य सम्भव नहीं होता। अतः यज्ञ कर्म में पत्नी का स्थान पति के दक्षिण या दाहिनी ओर रखा जाता है। उपरोक्त लिखित गर्भाधान आदि संस्कारों को छोड़ कर अन्यत्र समस्त संस्कारों अथवा यज्ञों में पत्नी को दक्षिण, दायें भाग में बिठाना चाहिए।

(संस्कार विधि, संस्कार रत्नमाला, 87 व्याघ्रपाद स्मृति 84)

होता, अध्वर्यु आदि के आसन – 'होता' का आसन वेदी से पश्चिम में

और पूर्व की ओर मुख होगा, 'अध्वर्यु' का आसन वेदी से उत्तर में और मुख दक्षिण की ओर होगा, 'उद्‌गाता' का आसन वेदी से पूर्व में और मुख पश्चिम की ओर होगा। 'ब्रह्मा' का आसन दक्षिण में और मुख उत्तर में होगा और 'यजमान' का आसन पश्चिम में और मुख पूर्व की ओर होगा अथवा यजमान उत्तराभिमुख होके दक्षिण में बैठें। तात्पर्य यह है कि यजमान के आसन दो स्थान वेदी के पश्चिम अथवा दक्षिण में नियत किए गए हैं। (संस्कार विधि सा. प्र.)

ऋत्विजों, यजमान व यजमान पत्नी के वस्त्र – श्वेत धोती अथवा कटिवस्त्रादि व माताओं की सफेद साड़ी आदि हों। रंगीन वस्त्र काले आदि पोशाक नहीं हों, फटे हुए न हों, धुले हुए, ऐसे श्वेत वस्त्रों को **'अहत'** कहा जाता है। सभी शुभ कामों को श्वेत वस्त्र पहन कर करना, कराना चाहिए। (बृद्धहारीत स्मृति 6।106)

नित्यकर्म का अभिप्राय यह है कि अपने मन का लक्ष्य परमेश्वर कों बनाया जाए। इसलिए प्रत्येक कर्म की समाप्ति पर यह कहा जाता है कि मैं इस कर्म का या इसके फल को परमेश्वर के अर्पण करता हूँ।

(उपदेश मंजरी चतुर्दश उपदेश)

ऋतुकाल में आहुति – रजोदर्शन के चार दिनों में स्त्रियों को यज्ञ में भाग नहीं लेना चाहिए।

बृहदयज्ञों व संस्कारों से पूर्व कर्त्तव्य कर्म – महर्षि दयानन्द जी ने ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ आदि को महा यज्ञ कहा है। ये प्रधान व अन्तरगं कार्य हैं। अतः नित्य कर्म स्वरूप दैनिक अग्निहोत्र को बृहद यज्ञों व संस्कारों से पहले करना चाहिए। (परिभाषिक 89, 46)

दैनिक यज्ञ में भिन्न जलपात्र में घी छोड़ना आदि निषिद्ध – जल पात्र में घी टपकाने का विधान गर्भाधान प्रकरण में एवं बृहद यज्ञों में है। (संस्कार विधि)

चार व्याहृतियाँ, स्विष्टकृत होमाहुति प्राजापत्याहुति दैनिक यज्ञ में निषिद्ध – ये आहुतियाँ इष्टियों, बृहद यज्ञों व संस्कारों में तो देने योग्य है किन्तु दैनिक यज्ञ में नहीं। [महर्षि दयानन्द जी निर्दिष्ट अग्निहोत्र पद्धति को विकृति व विसंगति से बचाया जाये।]

अग्नि रहित प्लेटादि में आहुति देना अनुचित – आहुतियाँ शास्त्रों के अनुसार प्रदीप्त अग्नि में देना ही इष्ट है।

आहुति कब देवें=आहुति का त्याग कब हो ? प्रायः लोग 'स्वाहा' कार बोलने के समय ही आहुति का त्याग करते हैं। किन्तु यह उत्तम विधि नहीं है। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने संस्कार विधि में 'स्वाहा' कार करने के पश्चात् अर्थात् 'स्वाहा' पद को बोलकर ही पीछे आहुति का प्रज्वलित अग्नि में त्याग करना चाहिए। (संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरण)

पूर्णाहुति के पश्चात् आहुति निषिद्ध – यज्ञ में पूर्णाहुति हो चुकने के पश्चात् अन्य किसी भी मन्त्र से आहुति न देवें, न दिलावें। **पूर्ण आहुति के लिए घी का विधान है।** अतः स्रुवा को घी में भर कर तीन आहुतियाँ देनी चाहिए। [पूर्ण आहुति के समय नारियल व छलनी का भी प्रयोग शास्त्र सम्मत नहीं।]

स्विष्टकृत् आहुति का हव्य द्रव्य – संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में स्विष्टकृत् आहुति के लिए घृत अथवा भात का विधान किया है।

बलि वैश्व देव यज्ञ कहाँ करें ? – चूल्हे की अग्नि में बलिवैश्व यज्ञ करने का विधान है। (सत्यार्थ प्रकाश चौथा समु.)

यज्ञ शेष – जिस पदार्थ को प्रधान होम के लिए बनाया जाता है और उससे आहुतियाँ दिलायी जाती है, उसे यज्ञ शेष कहा जाता है।

यजमान के लक्षण – जो यज्ञ का मान करता है, यज्ञ का मान वही करता है जो अन्तरात्मा का मान करता है। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

ऋत्विजों के लक्षण – अच्छे विद्वान धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले, वेदवित् एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें। (संस्कार विधि सा. प्र.)

पुरोहित – जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे (पुरोहित भी ऋत्विज कहलाता है जो एक हो तो उसका नाम पुरोहित होगा।) (सत्यार्थ प्रकाश चौथा समु., संस्कारविधि सामान्य प्रकरण)

ब्रह्मा – चारों वेदों अर्थ सहित जानने वाला जो यज्ञ करने वाला होता था उसे ब्रह्मा कहते थे। (उपदेश मंजरी दशम् उपदेश)

विशेष : पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों को यज्ञशाला में प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए। जिन बच्चों का यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, उन्हें भी आहुति नहीं देने दें।

समिधादान केवल यजमान द्वारा ही – तीन समिधाओं का हुत करना जहाँ केवल यजमान तक सीमित था वहाँ अब तीन और दिशाओं में भी बैठे सभी लोग चढ़ाने लग गए हैं। (यह भी विधान के विपरित है।)

घी में डुबोई हुई तीन समिधाओं को अग्नि में रखते समय जो मन्त्र बोले जाते हैं उन्हें 'समिधेनी ऋचायें' अर्थात् 'समीधेनी मन्त्र' कहते हैं। (ये तीन समिधाएँ अंगुष्ठ से अधिक मोटी नहीं होनी चाहिएं और लम्बाई आठ–आठ अंगुल की होनी चाहिए।)

समिधा तीन और मन्त्र चार क्यों ?

आरण्यक के आचार्य कहते हैं कि विश्व ब्रह्मांड में चलने वाले इस ईश्वरीय यज्ञ की पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीन समिधायें हैं। पृथ्वी नामक पहली समिधा के लिए अग्नि समिधेनी ऋचा है, अन्तरिक्ष नामक समिधा के लिए 'वायु और विद्युत' ये दो समिधेनी ऋचायें हैं। द्यौः नामक तीसरी समिधा के लिए 'आदित्याः' समिधेनी ऋचा है।

यह भी ध्यान रहे कि विश्व में जो ईश्वरीय यज्ञ चल रहा है, हमारा यह यज्ञ उनकी अनुकृति मात्र है। इसलिए, क्योंकि विश्व ब्रह्मांड में चलने वाले ईश्वरीय यज्ञ की तीन समिधायें और चार समिधेनी ऋचायें हैं, ठीक इसी प्रकार से हमारे यज्ञ में भी तीन समिधायें और उनके लिए चार समिधेनी ऋचायें हैं। (शंका–समाधान लेखमाला प्रथम भाग)

तीन समिधा विषयक रहस्य को लेकर हमारा विचार है कि मैत्रायणी संहिता 1।4।11 में कहा गया है कि "गायत्री वै यज्ञस्य प्रमा" अर्थात् गायत्री छंद यज्ञ की प्रमा = निर्माता है। यज्ञ व समिधान में **ओ३म् अयन्त इदम आत्मा, "ओ३म् समिधाग्निम्॰ ओ३म् सुसमिद्धाय॰ व ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो"** ये तीन मन्त्र तो गायत्री छंद में हैं और गायत्री के भी तीन चरण हैं। इसलिए यज्ञ कर्म तथा मन्त्र में एकरूपता लाने के लिए तीन समिधा का विधान है।

समिधा आठ अङ्गुल की क्यों ?

24 अक्षरों वाली गायत्री के तीन चरण हैं और एक चरण में आठ अक्षर हैं। अक्षरों की समता को ध्यान में रख प्रत्येक समिधा का परिमाण, लम्बाई में आठ अङ्गुल रखा गया।

1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8
तत् स वि तु व रि ये ण्यम् भ र्गो दे व स्य धी म हि
(तत्सवितुवरियेण्यम्)

1 2 3 4 5 6 7 8
धि यो यो नः प्र चो द यात् (यास्क मुनि)

1 2 3 4 5 6 7
तत् स वि तु र्व रे ण्यम् (सवितुर्वरेण्यम्) (निचृद् गायत्री छंद)

वेद मन्त्रों के बोलने की सामान्यरूपेण शैली निम्न है :–

"ऋग्वेद" के स्वरों का उच्चारण शीघ्र वृत्ति में होता है।
"यजुर्वेद" के स्वरों का उच्चारण ऋग्वेद के मन्त्रों से दूने काल में होता है।
"सामवेद" के स्वरों का उच्चारण व गान में प्रथम वृत्ति से तिगुना काल लगता है।
"अथर्ववेद" का उच्चारण उन्हीं तीनों वृत्तियों के मिलान से होता है। परन्तु इसका द्रुतवृत्ति में उच्चारण अधिक होता है। (ऋ. भाष्य भू. प्रश्नोत्तर)

यज्ञ के दिनों में 'याज्ञिकों' को ब्रह्मचर्यपूर्वक तथा अधिकांश समय साधना, उपासना और स्वाध्याय में ही लगाना चाहिए।

दीपक प्रज्वलन

याज्ञिकगण ध्यान दें–संस्कार विधि के सामान्य प्रकरणम् में भूर्भुवः स्वः मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जलाने का उल्लेख है। ऋषि लिखित टिप्पणी से स्पष्ट संकेत है कि यज्ञ वेदी पर बैठने से पूर्व ही ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के घर से यज्ञ की अग्नि लाकर अथवा घी का दीपक प्रज्वलित कर लेने का है।

वैदिक परम्परा है कि कोई भी शुभ कार्य, दीपक प्रज्वलन कर, आरम्भ किया जाता है। अतः मुख्य यजमान निम्न मन्त्र उच्चारण कर दीपक प्रज्वलित करे :

ओ३म् यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव।।

(ऋ॰ 9/113/7)

मन्त्रार्थ :– हे (पवमान) अविद्यादि क्लेशों के नाश करने हारे पवित्रस्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक परमात्मन्! (यत्र) जहाँ तेरे स्वरूप में (अजस्रम्) निरन्तर व्यापक, तेरा (ज्योतिः) तेज है, (यस्मिन्) जिस (लोके) ज्ञान से देखने योग्य तुझ में (स्वः) नित्य सुख (हितम्) स्थित है, (तस्मिन्) उस (अमृते) जन्म–मरण और (अक्षिते) नाश से रहित (लोके) दृष्टि व अपने स्वरूप में आप (मा) मुझको (इन्द्राय) परमैश्वर्य प्राप्ति के लिए (धेहि) कृपा से धारण कीजिये, और मुझ पर माता के समान कृपा भाव से (परिस्रव) आनन्द की वर्षा कीजिए। (ऋ॰ 9/113/7)

ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्न आ सुव।।1।।

यजु॰ 30।3।।

मन्त्रार्थ :– हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुगुर्ण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिए, (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, (तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त कीजिए।

भावार्थ :– हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता दिव्यगुणों वाले देव आप हमारे

सब बुरे भावों का नाश कीजिए, इन को हमसे दूर रखिए। और जो कल्याणकारी भाव हैं, सुन्दर विचार हैं उनको हमें प्राप्त करवाइये।

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।2।।

यजु॰ 13।4।।

मन्त्रार्थ :– जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य–चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किए हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत्) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

भावार्थ :– वह प्रभु प्रकाश रूप है। समस्त चमकने वाले पदार्थ (सृष्टि से पूर्व) सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि उसी के अन्दर विद्यमान थे। जितने भी प्राणी विश्व में उत्पन्न हुए हैं उन सबका वही एक स्वामी था। तत्पश्चात् जब सृष्टि उत्पन्न हो गई तो उसी ने पृथ्वी लोक और द्युलोक को धारण किया। हम किस प्रभु की, किस देवता की भक्ति करें ? इसका उत्तर इसी में है – हम उसी सुखस्वरूप प्रभु की यज्ञार्थ कर्मों के द्वारा विशेष रूप से भक्ति करें।

ओ३म् यः आत्मदा बलदा यस्य विश्वं उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मैदेवाय हविषा विधेम।।3।।

यजु॰ 25।13।।

मन्त्रार्थ :– (यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता, (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष, सत्यस्वरूप

शासन और न्याय, अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्षसुखदायक है, (यस्य) जिसका न मानना, अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप, (देवाय)-सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञापालन करने में तत्पर रहें।

भावार्थ :– जो आत्मिक शक्ति का देने वाला है। जिसकी आज्ञा तथा ज्ञान की सारे विद्वान् लोग उपासना करते हैं, आज्ञा मानते हैं। जिसका आश्रय अमृत पूर्ण सुख का साधन है। जिससे विमुख रहना ही मृत्यु है, महान् दुःख है। उस सुखस्वरूप प्रभु की हम भक्ति पूर्वक पूजा करें।

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।4।।

यजु॰ 23।3।।

मन्त्रार्थ :– (यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एकः इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति करें।

भावार्थ :– जो इस संसार का राजा है। प्राण–धारण करने वाले और पलक मारने वाले जीवों का जो स्वामी है। जो इस संसार में रहने वाले, दो पैर वाले मनुष्यों का तथा चार पैर वाले पशुओं का शासक है उसी सुखस्वरूप प्रभु की हम यज्ञ द्वारा भक्ति, पूजा करें।

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।5।।

यजु॰ 32।6।।

मन्त्रार्थ :– (येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्यादि (च)

और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक–लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त, अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

भावार्थ :– जिस प्रभु ने इस तीव्र स्वभाव वाले द्युलोक को, कठोर पृथ्वी को, स्वर्ग लोक को (सुख के स्थान को) और मोक्ष के आनन्द को धारण कर रखा है। जो अन्तरिक्ष में घूमने वाले लोक–लोकान्तरों को गतिशील बनाता है। उसी सुख स्वरूप प्रभु की हम सब उत्तम कर्मों के द्वारा भक्ति करें।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।6।।

ऋ॰ 10।121।10।।

मन्त्रार्थ :– हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मन् ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न, दूसरा कोई (ता) उन, (एतानि) इन– (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़–चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस–जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें।

भावार्थ :– हे प्रजाओं के स्वामी ! आपके अतिरिक्त इस सारी सृष्टि का स्वामी कोई नहीं है। हम जो–जो कामना करते हुए आपके लिए यज्ञ करते हैं वह सब कुछ हमें आपसे प्राप्त हो। हम सब उत्तम–उत्तम धनों के स्वामी बनें।

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।7।।

यजु॰ 32।10।।

मन्त्रार्थ :— हे मनुष्यो! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों को पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख–दुःख से रहित, नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें।

भावार्थ :— वह प्रभु हमारा बन्धु और उत्पन्न करने वाला है। उसी ने सब लोक–लोकान्तरों को धारण किया हुआ है। वह समस्त भुवनों को जानता है। विद्वान् लोग उसी की समीपता को पाकर मोक्ष का आनन्द भोगते हैं। उसी की कृपा से महात्मा लोग तीसरे लोक में अर्थात् जागृत, स्वप्न इन दो अवस्थाओं को पार करके तीसरी समाधि की अवस्था को प्राप्त कर के स्वतन्त्रतापूर्वक सर्वत्र घूमते हैं।

ओ३म् अग्ने नयं सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।8।।

यजु. 40।16।।

मन्त्रार्थ :— हे (अग्ने) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे, (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे, धर्मयुक्त, आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिए। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

भावार्थ :— हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! समस्त उत्तम–उत्तम धनों की प्राप्ति के

लिए आप हमें सुमार्ग पर ले जायें। आप दिव्यगुणयुक्त हैं और सब प्रकार के ज्ञान तथा विज्ञान के स्वामी हैं। अतः हमारी कुटिलता को दूर कीजिए। हम आपको परम प्रेमपूर्वक बार–बार नमस्कार करते हैं।

इति ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना मन्त्राः।।

"आप्त" लोग वे होते हैं जो धर्मात्मा, कपट छलादि दोषों से रहित, सब विद्याओं से युक्त, महायोगी और सब मनुष्यों के सुख होने के लिए सत्य का उपदेश करने वाले हैं।

(ऋ.भाष्य भू. वेदनित्यविषय)

"मनुष्य" जो मननशील होकर स्वात्मवत् अपनी आत्मा से अन्यों के सुख–दुःख और हानि–लाभ को समझे।

स्वस्ति वाचन

स्वस्ति वाचन का भाव :– "स्वस्ति" सु + अस्ति इन दोनों पदों के योग से बना है। सु = अच्छा, अस्ति = है, अर्थात् शुभ, श्रेष्ठ, मंगल और कल्याण की कामना करना। इस प्रकार मंगलमय, प्रेरणादायक एवं कल्याणकारी मन्त्रों का वाचन करना ही स्वस्ति वाचन है।

पारायण यज्ञ प्रारम्भ करने वाले दिन अवश्य करें अन्य दिन करना आवश्यक नहीं है। यदि ब्रह्मा जी चाहें तो पूर्णाहुति वाले दिन पुनः पाठ किया जा सकता है।

प्रभु स्तुति

ओ३म् अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ।।1।। ऋ॰ 1/1/1

मन्त्रार्थ :– मैं (पुरोहितम्) सृष्टि के रचियता, (यज्ञस्यदेवम्) सृष्टि यज्ञ के परमदेव (ऋत्विजम्) सबका संचालन करने वाले अर्थात् ऋतु के अनुसार प्रेरणा देने वाले, (होतारम्) सब सुन्दर अभीष्ट पदार्थों के देने वाले, (रत्नधातमम्) पृथ्वी स्वर्ण आदि रत्नों के धारण करने वाले समस्त धनों के स्वामी, (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप प्रभु की (ईडे) स्तुति करता हूँ।

भावार्थ :– प्रभु का भक्त भक्तिभाव से पूर्ण होकर कहता है कि मैं उस दिव्य गुणों वाले दानी, परोपकारी, सर्वत्र चमकने वाले, यज्ञ में शुभ कामों में लगाने वाले, सदा हितकारी बनाकर आगे ले ज़ाने वाले अग्नि स्वरूप, नेतारूप प्रभु की स्तुति करता हूँ ताकि मैं ये गुण धारण कर सकूँ। संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं को प्राप्त कर दानी बन सकूँ।

उत्तराधिकारी कौन ?

ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।2।। ऋ॰ 1/1/9

मन्त्रार्थ :– हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! (सः) वह तू (सूनवे) अपनी सन्तान के लिए (पितेव) पिता के समान (नः) हमारे लिए (सुपायनः) सुगमता से जानने योग्य (भव) होवे और (नः) हमें (स्वस्तये) सुख और

कल्याण के लिए, (सचस्व) अपने से मिला लीजिए।

भावार्थ :– हे पिता हम तेरे पास तेरे पुत्र बनकर सुख पाने के लिए तेरे पास सुगमता से आने के अधिकारी बनें इसी में हमारा कल्याण है। पुत्र वही पिता को सुगमता से पा सकता है जो पिता की आज्ञा मान उसके बताए या चलाए नियमों के अनुसार अपने जीवन को बनाता है, इससे विपरीत नहीं। तुम प्रभु को बुलाते रहो, प्रार्थना करते रहो, परन्तु मनमानी करते रहो तो वह हमारी इच्छा कभी भी पूरी नहीं करेगा। आज्ञाकारी, सदाचारी पुत्र ही पिता की सम्पति का उत्तराधिकारी बन सकता है।

दिव्य विभूतियों का सदुपयोग

ओ३म् स्वस्ति नों मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना।।3।।

ऋ॰ 5।51।11।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जन, (अनर्वणः) ऐश्वर्यरहित अर्थात् आलस्यरहित का (स्वस्ति) कल्याण (मिमाताम्) करें। (भगः) सेवनीय वायु (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुखकारी होवे और (देवी) प्रकाशित (अदितिः) अखण्ड विद्या (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याणकारी होवे। (सुचेतना) उत्तम ज्ञान से (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक हमारे लिए (स्वस्ति) सुख और (पूषा) पुष्टि करने वाला दुग्धादि पदार्थ और (असुरः) मेघ (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुखकारी (दधतु) होवे।

भावार्थ :– इस मन्त्र में यह शिक्षा दी गई है कि अध्यापक तथा उपदेशक लोगों को ऐसी शिक्षा और उपदेश देवें जिससे प्रत्येक मनुष्य अखण्ड सत्य, विद्या और विज्ञान को प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली बनें, दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों को प्राप्त करें, मेघों से वर्षा और पृथ्वी द्युलोक से विज्ञान को प्राप्त करके उनका सदुपयोग करें।

सद्ज्ञान द्वारा श्रेष्ठ कर्म

**ओ३म स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।।4।।**

ऋ० 5।51।12।।

मन्त्रार्थ :– जैसे हम (स्वस्तये) सुख के लिए (वायुम्) वायु के समान वेगवान और (सोमम्) चन्द्र के समान आह्लादिक परमेश्वर की (उपब्रवामहै) स्तुति करते हैं। (यः) जो (भवनस्य) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का (पतिः) स्वामी है, वह हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। वह (सर्वगणं) प्राणीमात्र का आधार (बृहस्पति) बृहत ब्रह्माण्डों, वेद वाणियों के स्वामी परमेश्वर की (नः) हम अपने (स्वस्तये) कल्याण के लिए स्तुति करते हैं। (आदित्यासः) अदिति=वेद विद्या या भूमि माता के पुत्र (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिए (भवन्तु) हों।

भावार्थ :– हम सब सुख, ऐश्वर्य पाने के लिए वायु और सोम की विद्या को जानें और प्रचार करें। संसार के तथा वाणी के स्वामी की उपासना करें। प्रभु पर विश्वास रखते हुए उनकी वेदवाणी का मन, वचन और कर्म से अभ्यास करें। इसीलिए आदित्य ब्रह्मचारी हमारी सहायता करें। श्रेष्ठ विद्वानों के बिना सद्ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। सद्ज्ञान बिना श्रेष्ठ कर्म नहीं हो सकते।

प्रभु हमें अपराध से बचाए

**ओ३म् विश्वें देवा नों अद्या स्वस्तयें वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तयें।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तयें स्वस्ति नों रुद्रः पात्वंहसः।।5।।**

ऋ० 5।51।13।।

मन्त्रार्थ :– (अद्यः) आज (विश्वेदेवाः) सारे विद्वान् (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिए हों, (वैश्वानरः) सुख के लिए सब में व्यापक अग्नि (वसुः) सब को वास देने वाला (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (स्वस्तये) हमारे लिए कल्याणकारी हो। (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवा) विद्वान्‌जन विद्या, सुख के लिए

(स्वस्तये) कल्याण के लिए (भवन्तु) हों, (रूद्रः) दुष्टों का नाश करने वाले प्रभु (नः) हमें (अंहसः पातु) अपराधों से बचायें, जिससे हमारा कल्याण हो।
भावार्थ :– विद्वानों की कृपा से हम उत्तम उपदेश को ग्रहण करें तथा प्रभु की दण्ड विधायक शक्ति का ध्यान रखते हुए कभी अपराध न करें–रक्षा करें।

जीवन सुखी याचना

ओ३म् स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नों अदिते कृधि।।6।।

ऋ॰ 5।51।14।।

मन्त्रार्थ :– (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु (स्वस्ति) कल्याणमय हों, (रेवती पथ्ये) धन के मार्ग में (स्वस्ति) कल्याण हो। (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) बिजली (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याणकारी हों। हे (अदिते) अखण्ड विद्याधारी प्रभु ! (नः) हमारा (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करो।
भावार्थ :– हे विद्वान् आप हमें ऐसे ही सुखी बनाइये जैसे कर्म करते हुए प्राण उदान हमारी रक्षा करते हैं। वायु और बिजली हमारी सहायता करती है। जिन विद्वानों की विद्या अखण्ड होती है उनके वचन ही जीवन को सुखी बनाते हैं।

सन्मार्ग पथिक

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि।।7।।

ऋ॰ 5।51।15।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से हम (सूर्यचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा की भाँति (स्वस्ति पन्थाम्) कल्याणकारी मार्ग का (अनुचरेम) अनुसरण करें, और (पुनः) बार–बार (ददता) दानी (अघ्नता) अहिंसक और (जानता) ज्ञानी लोगों की (संगमेमहि) संगति करें।
भावार्थ :– ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो! यदि कल्याण चाहते हो

तो जैसे चन्द्रमा, सूर्य के पीछे-पीछे चलता हुआ उसके प्रकाश को प्राप्त करता है उसी प्रकार आप भी दानी, परोपकारी और ज्ञानी मनुष्यों का अनुकरण करते हुए जीवन को त्यागी, परोपकारी और ज्ञानी बनाओ यही कल्याण का सच्चा मार्ग है।

उपदेशक कैसा हो ?

ओ३म् ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।8।।

ऋ.7।35।15।।

मन्त्रार्थ :— हे प्रभो! (ये) जो (देवानाम्) विद्वानों के बीच विद्वान्, (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने के योग्यों में, (यज्ञियाः) यज्ञ करने योग्य (मनोः) मननशील मनुष्य समाज के (यजत्राः) पूज्य है। (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य व जीवनमुक्त रहने (ऋतज्ञाः) और सत्य को जानने वाले हैं। (ते) वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिए (उरुगायम्) बहुतों के गाऐ हुए विद्याबोध का (रासन्ताम्) उपदेश करें। विद्वानो! (यूयं) आप सब लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो।
भावार्थ :— हे विद्वानो! जो अत्यन्त विद्वान्, शिल्पी, सदाचारी और जीवनमुक्त है, ब्रह्मज्ञानी है, हमारी विद्यादि दोनों से उन्नति में सहायक होते हैं, उनकी हम सदा सेवा करें।

रक्षक सूर्य

ओ३म् येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये।।9।।

ऋ. 10।63।3।।

मन्त्रार्थ :— हे प्रभो! (येभ्यो) जिन विद्वानों की सहायता से, (माता) माता के समान पृथ्वी, (मधुमत्पयः) दूध अथवा अन्नयुक्त उत्तम (पयः) जल को (पिन्वते) प्रदान कर रही है। (अदितिः) अखण्ड (अद्रिवर्हाः) मेघों से भरपूर

आकाश जल बरसाता है, (द्यौः) द्युलोक (पीयूषं) अमृत के समान जल को दे रहा है। (तान्) उन (उक्थशुष्मान्) अत्यन्त बल वाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि कराने वाले (स्वप्नसः) श्रेष्ठ कर्म करने वाले, (आदित्यान्) सूर्य किरणों को (स्वस्तये) कल्याण के लिए (अनुमदा) प्राप्त करावें।

भावार्थ :– जो विद्वान् अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश की विद्या को और सूर्य किरणों को जानकर उसके द्वारा संसार के लिए सुख के साधन जुटाते हैं हम लोग उनका सत्संग करें तथा उनके उपदेशों से लाभ उठायें। इसी में हमारा कल्याण है।

अमरत्व प्राप्ति

ओ३म् नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये।।10।।

ऋ॰ 10।63।4।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! जो (नृचक्षसः) मनुष्यों के दृष्टा (अनिमिषन्तः) आलस्य रहित (अर्हणा) पूज्य (वृहद्देवासः) महान् विद्वान लोग हैं, जो (अमृतत्वम्) अमर पद (आनशुः) प्राप्त कर चुके हैं। जो (ज्योतीरथाः) ज्ञानरूपी रथ पर चढ़ कर सर्वत्र विचरने वाले (अहिमायाः) जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता है, ऐसे (अनागसः) पाप से रहित लोग (दिवः) प्रकाशयुक्त प्रभु के (वर्ष्माणं) परम पद मोक्ष में (वसते) निवास करते हैं। वे (स्वस्तये) हमारे लिए कल्याणकारी हों।

भावार्थ :– परिश्रमी, विद्वान्, योग्य और उज्जवल जीवन वाले, विद्वान् और निष्पाप जीवन से उपकार ही करते रहते हैं वे अपने जीवन को यज्ञमय बना कर अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

सत्कार योग्य विद्वान्

ओ३म सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये।।11।।

ऋ॰ 10।63।5।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! (ये) जो (सम्राजः) अपने गुणों से प्रकाशमान, (सुवृधः) अपने

सवने सुते भरा नून भूषत श्रुते। (272)
ज्ञान यज्ञ में भाग लेने वाले निश्चित् रुप से सद्‌गुणों से भूषित हों।

यज्ञन कर्म से सबको बढ़ाने वाले, (यज्ञम्) परोपकार रूपी यज्ञ कार्य में (आययुः) प्रवेश करते हैं, वे (अपरिह्वृता) कुटिलता से रहित स्वभाव वाले (दिवि) प्रकाशमान लोक में (क्षयम्) निवास (दधिरे) करते हैं। (तान्) उन (आदित्यान्) देवमाता के पुत्रों का (नमसा) नम्रता आदि श्रेष्ठ गुणों के कारण (महः) प्रभु की (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (आविवास) सब तरह से प्राप्त हो जाता है, वे (स्वस्तये) कल्याणार्थ (अदितिं) सच्चाई को ही ग्रहण करते हैं।

भावार्थ :– वही लोग सत्कार के योग्य होते हैं जो कुटिल न बनकर यज्ञमय, परोपकारी जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे कर्मठ विद्वानों की संसार में पूजा होनी चाहिए। अपने कल्याण के लिए हम सदा उनका सत्संग करें।

पाप–निवारक यज्ञ

**ओ३म् को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये।।12।।**

ऋ॰ 10।63।6।।

मन्त्रार्थ :– प्रभु की कृपा से (विश्वे देवासः) हे समस्त विद्वानो ! (वः) आप में (वः) कौन (स्तोमम्) उपदेष्टव्य वेद ज्ञान स्तुति का (राधति) कौन उपदेश करता है (यम) जिसकी आप (जुजोषथ) सप्रेम सेवा करते हैं। (तुविजाता) विद्वानजन (मनुष) मननशील मनुष्यो तुम (यतिष्ठन) जितने भी हों (वः) उनमें (कः) कौन (अध्वरम्) यज्ञ को (अरम्) सुशोभित करता है। (यः) जो (अहः) पापयुक्त कर्मों से (अति) हटा कर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (नः) हमको (पर्षत्) पार ले जाता है।

भावार्थ :– हे देवो ! मननशील विद्वानो प्रभु कृपा से आप अपने ज्ञान से हमारे यज्ञों को अलंकृत कर अपने उपदेशों से पापनिवारक यज्ञों से हमें पापों से हटा कर कल्याण पथ को प्राप्त कराइये।

सन्मार्ग–दर्शक अखण्डव्रती

**ओ३म् येभ्यो होत्रां प्रथमामायजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये।।13।।**

ऋ॰ 10।63।7।।

आ नो भर सुवितं यस्य कोना।
जिस धन की हम कामना करें उसे हमारे लिये प्राप्त कराइए।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आप हमें (समिद्धाग्निः) अग्निहोत्री (मनुः) मननशील मनुष्य (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सप्त होताओं के द्वारा (येभ्यः) जिनके पास से (प्रथमाम्) प्रथम (होत्राम्) यज्ञ विद्या को (आयेजे) ग्रहण करता है। (ते) वे (आदित्याः) अखण्ड व्रतधारी विद्वान् (नः) हमें (अभय) भयरहित (शर्म) सुख उत्पन्न करने वाले को (यच्छत) देवें और (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए (सुपथा) उत्तम मार्गों को (सुगा) सरलता से चलने योग्य (कर्त) करें।
भावार्थ :– पूर्वकाल से सात होताओं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि सहित जिन्होंने यज्ञ किया है और करते आ रहे हैं वही अखण्डव्रती हमारे कल्याण के लिए यज्ञ कराते रहें।

पापमोचक ज्ञानी

ओ३म् य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातु–र्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये।।14।।

ऋ॰ 10। 63।8।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! (ये) जो (प्रचेतसः) ज्ञानी (मन्तवः) मननशील (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) जगत् के (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) चेतन के (ईशिरे) शासक होते हैं। (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (नः) हमें (कृताद्) किये हुए शारीरिक और (अकृताद्) न किए हुए मानसिक (एनस) पाप से (परि) हटा कर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (अद्य) आज (पिपृत) रक्षा करें।
भावार्थ :– जो विद्वान् प्रकृति के नियमों को जानता है, जो सच्चा तत्त्वदर्शी है वह संसार के जड़ चेतन पदार्थों से लाभ उठा सकता है। शारीरिक और मानसिक पापों से बचा जा सकता है।

परमेश्वर का आवाहन्

ओ३म् भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।15।।

ऋ॰ 10।63।9।।

आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युः।
हे प्रभो ! आपके सभी भक्त परस्पर मित्रवत् व्यवहार करें।

मन्त्रार्थ :– (भरेषु) संकटों व संग्रामों में (स्वस्तये) कल्याणार्थ (सुहवम्) सहज से पुकार सुनने वाले, (अहोमुचम्) बुराइयों पाप से छुड़ाने वाले, (सुकृतम्) श्रेष्ठ कर्मों को कराने वाले (दैव्यम् जनम्) दिव्य शक्ति सम्पन्न संसार को (इन्द्रम्) उत्पन्न करने वाले सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का आहवान् करते हैं। (अग्निम्) प्रकाश स्वरूप, (मित्रम्) हित करने वाले, (वरुणम्) ध्यान करने योग्य, (भगम्) भजनीय प्रभु को (सातये स्वस्तये) उत्तम कल्याण के लिए, (हवामहे) पुकारते हैं। प्रभो! आपकी कृपा से, (द्यावापृथिवी मरुतः) द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष लोक हमारे लिए कल्याणकारी हों।

भावार्थ :– संकटों में संग्रामों में उसी को बुलाते हैं, वही हमें पापों से छुड़ाता है, सब उत्तम वस्तुओं का रचयिता है, सबसे स्नेह करता है, अन्नदान भी वही करता है। ग्रहण करने योग्य भी वही है, भजने योग्य भी वही है। अन्तरिक्ष, पृथ्वी, वायु हमारा कल्याण करें।

दिव्य युक्त नौका

ओ३म् सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तयें।।16।।

ऋ॰ 10।63।10।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से (सुत्रामाणम्) उत्तम रीति से रक्षा करने वाली, (पृथिवीम्) विस्तृत फैली हुई, (द्यां) प्रकाशयुक्त (अनेहसम्) उपद्रवरहित (सुशर्माणम्) उत्तम सुख देने वाली, (सुप्रणीतिम्) जो बहुत सुन्दर रचना वाली अर्थात् कुशलता से बनाई गई है। (स्वरित्राम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त अर्थात् गतिशील (अनागसम्) दोषरहित, (अदितिम्) अखण्डित, (अस्रवन्तीम्) न टपकने वाली, (दैवीम्) दिव्य वाक्य अर्थात् विद्युत सम्बन्धी (नावम्) नौका के ऊपर (स्वस्ते) अपने कल्याण के लिए हम (आरुहेम) सवार हैं। [(दैवीम् नावम्) शरीर रूपी दिव्य नौका पर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आरुहेम) आरूढ़ होकर हम लोग जीवनरूपी यात्रा करें।]

भावार्थ :– जिस दिव्य युक्त नौका में सुख आदि के सामान हों, जो छेद वाली न हो, जिसमें अनेक प्रकार का प्रकाश हो, विद्वान् हों। उसी बड़ी नौका में सवार होकर समुद्र पार देश–देशान्तरों में जाकर अपने देश को लक्ष्मीवान् करें अथवा विद्वानों के संग से सच्चे धन का उपार्जन करें।
(यहाँ पर दैवी नाव के दो अर्थ हैं, वैज्ञानिक जहाज आदि शरीर रूपी दिव्य नौका।)

संकटमोचक सत्योपदेशक

**ओ३म् विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये।।17।।**

ऋ.10।63।11।।

मन्त्रार्थ :– प्रभु की कृपा से (विश्वे) हे समस्त (यजत्राः) पूजनीय (देवाः) विद्वानो आप. हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (अधिवोचत्) उपदेश कीजिए (नः) हमें (अभिह्रुत) कुटिलतायुक्त (दुरेवायाः) दुर्गति से (त्रायध्वम्) बचाइये। (अवसे) आत्मरक्षार्थ और (स्वस्तये) कल्याणार्थ (सत्यया) सत्य (देवहूत्या) वेदवाणी को (शृण्वतः) सुनने वाले (वः) आप लोगों को (हुवेम) पुकारते हैं।

भावार्थ :– विद्वानों के सत्योपदेश से ही हम सारे दुःख संकटों को पार कर सकते हैं।

पापभाव निराकरण

**ओ३म् अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्मयच्छता स्वस्तये।।18।।**

ऋ. 10।63।12।।

मन्त्रार्थ :– प्रभु की कृपा से (देवाः) हे विद्वज्जन ! (नः) हमारे (अमीवाम्) रोगादि को (अप) दूर करो और (विश्वाम्) सब (अनाहुतिम्) अयज्ञीय जीवन से (अप) दूर रखो (अघायतः) अत्याचार करने वाले (अरातिम्) दान न देने के भाव और (दुर्विदत्राम) कुमति को अर्थात् दुःख देने वाले, (द्वेष) द्वेषों को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (युयोतन) पृथक करो (नः) हमें (स्वस्तये) कल्याण के लिए (उरुशर्म) बहुत–सा सुख (यच्छता) प्रदान करो।

भावार्थ :– विद्वानों के उपदेश पर आचरण करने से दो काम होंगे एक तो हम यज्ञमय जीवन वाले होंगे और कुमति से बच सकेंगे, हिंसक और पाप के भाव दूर हो जायेंगे और दूसरे यज्ञमय जीवन बनाकर हम सदाचारी बनकर सुखी रहेंगे।

आदित्यासो [illegible] नो अंहसः (397)
सूर्य का प्रकाश हमें दुष्कर्मों से दूर करता है।

सन्मार्ग प्रदर्शक विद्वान्

ओ३म् अरिष्टः सः मर्त्तो विश्वं एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।।19।।

ऋ॰ 10।63।13।।

मन्त्रार्थ :– हे आदित्य ब्रह्मचारी विद्वानो ! {जो 48 साल ब्रह्मचर्य–व्रत रखकर विद्वान् हुए हों।} (यम) जिस मनुष्य का (स्वस्तये) कल्याणार्थ आप लोग (सुनीतिभिः) उत्तम नीतियों से (विश्वानि) समस्त (दुरिता) कुमार्ग दुर्व्यसनों से (परि अति नयथा) छुड़ा कर सन्मार्ग पर ले जाते हैं। (सः) वह (मर्त्तः) मनुष्य समूह (अरिष्टः) पीड़ारहित होकर (विश्वः) विविध लोकों और पदार्थों को प्राप्त कर (प्रएधते) सुख की ओर बढ़ता है और (धर्मणःपरि) धर्म का पालन करता हुआ (प्रजाभिः) सन्तानों के साथ (प्रजायते) फलता–फूलता है।

भावार्थ :– सूर्य के समान वेदज्ञान का प्रकाश करने हारें ज्ञानियों के मुख से उपदेश सुन कर ही मनुष्य सब प्रकार की पीड़ाओं और पापों से मुक्त हो सकता है।

रमणीय रथ

ओ३म् यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये।।20।।

ऋ॰ 10।63।14।।

मन्त्रार्थ :– हे (देवासः) गतिशील विद्वानो ! (मरुतः) वीर पुरुषो (यं) जिसको (वाजसातौ) धन, ऐश्वर्य, बल, अन्नादि की प्राप्ति पर, (यं) जिसको (शूरसातौ) पराक्रमी पुत्रों की प्राप्ति पर, (हिते) हितकारी (धने) धन की प्राप्ति पर, (अवथ) {उस प्रभु को} याद करते हैं। (प्रातर्यावाणं) प्रातः बेला में भजनीय, (इन्द्र) ऐश्वर्य आदि (सानसिं) प्रदान करने वाले (अरिष्यन्तं) निर्विघ्न रूप से सब जगह व्यापक प्रभु रूपी रथ पर, (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आरुहेम) शरण लेवें।

भावार्थ :– हितकर धनादि प्राप्ति के लिए हमें जहाँ शूरवीर बनना चाहिए वहाँ प्रभु रूपी रमणीय रथ की भी शरण लेनी चाहिए। क्योंकि उसकी सहायता के बिना वास्तविक विजय नहीं हो सकती।

सर्वत्र शुभ की प्राप्ति हो

ओ३म् स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यऽप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन।।21।।

ऋ०10।63।15।।

मन्त्रार्थ :– प्रभु की कृपा से (मरुतः) हे गतिशील विद्वानो (नः) हमारे लिए (पथ्यासु) मार्ग के योग्य=जल वाले देशों में (धन्वसु) जलरहित देशों=मरुस्थलों में (स्वस्ति) कल्याण हो (अप्सु स्वस्ति) जलमय प्रदेशों में कल्याण हो (स्वर्वति) द्युलोक आदि में (वृजने) आकाश में हमारा (स्वस्ति) कल्याण हो। (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु) पुत्रोत्पत्ति के (योनिषु) कारण गृहिणियों के शारीरिक अंगों में (स्वस्ति) कल्याण करो। (राये) धनादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (स्वस्ति) कल्याण करने हेतु (दधातन) योग्य बनाओ।

भावार्थ :– विद्वानों के संग से, उपदेश से हमें सर्वत्र शुभ की प्राप्ति हो।

सुखदा पृथ्वी

ओ३म् स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमासो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा।।22।।

ऋ०10।63।16।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से (या) जो पृथ्वी और समुद्र (प्रपथे) जाने वालों के अच्छे मार्ग के लिए (स्वस्ति इत हि) कल्याणकारी ही होती है, (या) जो (श्रेष्ठा) बहुत सुन्दर (रेक्ण स्वस्ति) धन–धान्य से पूर्ण तथा सेवन करने के लिए (वामम्) अन्न आदि को (अभिएति) प्राप्त कराती है। (सा) वह पृथ्वी (नः) हमारा (अमा) गृह निवास स्थान है, (सा उ) वही पृथ्वी (अरणे) वन आदि में हमारी (निपातु) रक्षा करे और (देवगोपा) विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं, (स्वावेशा) ऐसी वह पृथ्वी सुन्दर निवास देने योग्य (भवतु) होवे।

भावार्थ :– घर को सुखी बनाने वाली सुगृहणी होती है। पति–पत्नी की अनुकूलता से ही गृहस्थ जीवन सुखी हो सकता है।

उत्तम कामों की सिद्धि

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशं थंः सो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि।।23।।

यजु. 1।1।।

मन्त्रार्थ :– हे मनुष्य लोगो ! जो (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला, सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (देवः) सब सुखों का देने वाला और सर्वज्ञान प्रकाशक परमात्मा है। सो (त्वा वः) तुम सबको जो (वायवः) स्पर्श गुण वाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियों आदि (स्थ) हैं, उनको (श्रेष्ठतमाय) श्रेष्ठतम (कर्मणे) कर्मों के लिए सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिए (प्रार्पयतु) भली प्रकार संयुक्त करें। हम लोग (इषे) अन्नादि उत्तम–उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (उर्जे) पराक्रम अर्थात् रस की प्राप्ति के लिए (भागम्) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उत्तम गुण वाले, आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं। हे मित्र लोगो ! तुम भी ऐसे हो कर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हों। हे भगवन् ! हम लोगों के (इन्द्राय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (प्रजावतीः) जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो (अनमीवाः) रोग रहित और (अयक्ष्माः) जिनमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं, वे (अघ्न्या) जो–जो गौ आदि पशु व उन्नति करने योग्य हैं, जो सभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियों व पृथ्वी आदि लोक हैं, उनको सदैव (प्रार्पयतु) नियत कीजिए। हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिए कोई (अघशंस) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हों तथा आप इस (यजमानस्य) सर्वोपकारी, धर्म के सेवन करने वाले, यजमान के (पशून्) गौ, घोड़े और हाथी आदि पशुओं की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए और (अस्मिन्) इस धार्मिक (गोपतौ) पृथ्वी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्यों के समीप (बह्वीः) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात्) हों।

भावार्थ :– विद्वानों को सर्वप्रथम ऋग्वेद को पढ़ना चाहिए जिससे उन्हें सब पदार्थों के गुणों का ज्ञान हो जाये। तत्पश्चात् उन पदार्थों का ठीक–ठीक प्रयोग करके उत्तम अन्न और बल की प्राप्ति करें तथा पापियों का नाश करें। हम सदा श्रेष्ठ कर्म करें, उचित साधनों से ऐश्वर्य को पायें, हमारी सन्तान तभी रोगरहित होगी जब हमारा अर्जित धन शुद्ध साधनों से कमाया जाएगा, चोर–डाकुओं से भी पीड़ित नहीं होंगे। इन्द्रिय संयमी बनकर दृढ़ रहेंगे। यजमान बनेंगे, निष्काम कर्म करेंगे तभी हमारे सभी पशुओं की, हमारे कार्य साधनों की रक्षा होगी। यजुर्वेद के इस मन्त्र में मनुष्य की सर्वोन्मुखी उन्नति के साधनों का वर्णन किया गया है। भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि मुझे अन्न, धन, शक्ति, नीरोग सन्तान दें, जिससे मैं श्रेष्ठ कर्म करता हुआ पापों तथा पापियों से पृथक् रह सकूं।

धर्मानुसार आचरण

ओ३म् आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।24।।

यजु॰ 25।14।।

मन्त्रार्थ :– हे ईश्वर ! (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) कल्याणकारक (अदब्धासः) अविध्नित, (अपरीतसः) एकाग्रता से सम्पन्न, और (उद्भिदः) दुःखनाशक, वे (कृतवः) यज्ञकर्म व बुद्धि–बल (आ यन्तु) भली–भाँति मुझे प्राप्त हो। (यथा) जिससे (देवाः) देव लोग (नः) हमारी (सदम् इत्) सदा ही (वृधे) वृद्धि के लिये और (आप्रायुवः) प्रमादरहित होकर (नः) हमारी (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रक्षितारः) रक्षा करने वाले (असन्) बने रहें।

भावार्थ :– सभी को विद्वानों के संग से बुद्धिमान् बनना चाहिए। धर्म का ही सदा आचरण करना चाहिए, सब को सब की रक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए।

दान भाव

ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां थ्ठं रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानां थ्ठं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।25।।

यजु० 25।15।।

मन्त्रार्थ :– हे भगवन्! (ऋजूयताम्) सरलता से आचरण करने वाले (देवानाम्) विद्वानों की, (भद्रा) कल्याणकारक (सुमति) उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो और (देवानाम्) विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि पदार्थों का दान भाव (नः) हमको (अभि+नि+वर्त्तताम्) सब गुणों से पूर्ण करे। (वयम्) हम लोग (देवनाम्) विद्वानों के (सख्यम्) मित्र भाव को, संगति को (उप+सेदिमा) भलि भाँति पावें जिससे कि (देवा) विद्वान् अपने ज्ञानादि–शुभकर्मों की प्रेरणा से (नः) हमको (जीवसे) जीने के लिये (आयुः) पूर्ण आयु को (प्र+तिरन्तु) पूरी भुगावें।

भावार्थ :– विद्वानों से उत्तम बुद्धि पाकर मनुष्य ब्रह्मचर्य से आयु को बढ़ावें सदैव धार्मिकों से मित्रता रखें।

ईश्वर उपासना

ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।।26।।

यजु० 25।18।।

मन्त्रार्थ :– हे मनुष्यो! (वयम्) हम लोग, (अवसे) रक्षा आदि के लिए, (जगतः) चर और (तस्थुष) अचर जगत् के (पतिम्) स्वामी, (धियञ्जिन्वम्) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न व शुद्ध करने वाले (तम्) उस अखण्ड (ईशानम्) परमात्मा की (हूमहे) उपासना करते हैं। (यथा) जैसे वह (पूषाः) सबकी पुष्टि करने वाला (नः) हमारे (वेदसाम्) ज्ञानों और धनों को (वृधे) वृद्धि के लिए और (स्वस्तये) समृद्धि के लिए (अदब्धः) अचूक (रक्षिता) रक्षक और (पायुः) पालक (असत्) होवे।

भावार्थ :– सब विद्वान् ऐसा उपदेश करें कि सभी लोग उस ईश्वर की उपासना करते हुए अपनी उन्नति में लगे रहें।

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत। (1112)
सूर्य रश्मियों से, गुण सहित हवाओं से इंद्र हमें स्वास्थ्य प्रदान करें।

सबके सुख की कामना

ओ३म् स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।27।।

यजु॰ 25।19।।

मन्त्रार्थ :– हे मनुष्यो! जो (वृद्धश्रवाः) बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) उत्तम सुख प्रदान करे, जो (विश्व वेदाः) सब जानने वाले (सर्वज्ञ) अर्थात् समस्त जगत् में वेद ही जिसका धन है, वह (पूषा) सबका पुष्टि करने वाला (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण प्रदान करे। जो (तार्क्ष्यः) गतिशील {सर्वव्यापक} (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महतत्त्व आदि का स्वामी व पालन करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) उत्तम गुण, सुख को (दधातु) प्रदान करे।

भावार्थ :– प्रत्येक को अपने समान ही दूसरों के सुख की भी कामना करनी चाहिए। जैसे हम दुःखी होना नहीं चाहते, दूसरों को भी दुःखी न करें।

आनन्दमयी जीवन

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।28।।

यजु॰ 25।21।।

मन्त्रार्थ :– (देवाः) दिव्यगुण धारक, (यजत्र. यजनीय प्रभो! आपकी कृपा से हम लोग (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) शुभ उस वचन को (शृणुयाम) सुनें, (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम्) शुभ को ही (पश्चेम) देखें। (स्थिरै) स्थिर (अङ्गै) अंगों से युक्त (तनूभिः) शरीर से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की प्रशंसा करते हुए (यत्) जो (देवहितम्) देवों के हित करने के लिए अपनी (आयुः) आयु (वि अशेमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

भावार्थ :– मनुष्य को सदा विद्वानों की अच्छी बातें ही सुननी चाहिए। सच्ची ही देखनी चाहिए। दृढ़ अंगों से ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। तभी हम दीर्घ और स्वस्थ जीवन का आनन्द भोग सकते हैं।

प्रभु की हृदय में अनुभूति

2 3 1 1 3 1 2 3 2 3 1 2
ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
1र 2र 3 1 2
नि होता सत्सि बर्हिषि।।29।।

साम प्रपा॰ 1/1

मन्त्रार्थ :– हे (अग्नि) प्रकाशस्वरूप प्रभो! आप (वीतये) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों की व्याप्ति के लिए (हव्यदातये) भक्तों के कर्मबन्धनों के उच्छेद के लिये, भोग पदार्थों को देने के लिए (आ याहि) आइये। हे (होता) दाता, (गृणानः) कल्याण के मार्ग का उपदेश देते हुए (बर्हिषि) हमारे यज्ञ में, अथवा रूप ध्यान हृदयान्तरिक्ष में आप (निसत्सि) निरन्तर विराजमान रहिये।

भावार्थ :– प्रभो ! हम आप से प्रार्थना करते हैं, आप सदा हमारे हृदय में ही विराजमान रहो। हम सदा आपको अपने हृदय में अनुभव करें।

प्रभु स्तुति गान

1 2 3 2 3 2 3 1 2 3 2
ओ३म् त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां [illegible] हितः
3 2 3 1 2 3 1 2
देवेभिर्मानुषे जने।।30।।

साम छन्द आ॰ प्रपा॰ 1/2

मन्त्रार्थ :– हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभो ! (त्वम्) आप (विश्वेषां) सब (यज्ञानाम्) यज्ञों के परोपकारी कार्यों के (होता) ग्रहण करने वाले हैं। (देवेभिः) अपने दिव्यगुणों से आप (मानुषे जनेः) विचारशील पुरुषों में भक्ति आदि से (हितः) धारण किये जाते हो।

धनञ्जयो रणे रणे (1382)

अग्नि शक्ति युद्ध में विजय प्रदान करने वाली है।

भावार्थ :— हे प्रभो ! आप यज्ञ स्वरुप हो, सब यज्ञ आपके ही लिये किये जाते हैं; आपकी ही प्रेरणा से ही सब यज्ञ होते हैं। सब विद्वान् आपकी ही स्तुति का गान करते हैं।

प्रभु से बल याचना

ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽअद्य दधातु मे।।31।।

अथर्व॰ 1।1।1।।

मन्त्रार्थ :— इस मन्त्र में त्रिषप्ता शब्द से 21 पदार्थों को जगत् को धारण करने का कारण कहा है। (ये) जो, (त्रिषप्ताः) तीन–सात–इक्कीस।

तीन–प्रकृति की तीन अवस्थाऐं (गुण)–सत्व, रज और तम।

सात–जितने ब्रह्माण्ड में लोक हैं उनके ऊपर सात–सात आवरण हैं–एक समुद्र, दूसरा त्रसरेणु, तीसरा मेघमण्डल, चौथा वृष्टिजल, पांचवां वृष्टिजल के ऊपर एक प्रकार का वायु, छठा अत्यन्त सूक्ष्म वायु जिसको 'धनंजय' कहते हैं और सातवां 'सूत्रात्मा वायु' जो कि धनंजय से भी सूक्ष्म है, ये सात परिधि कहलाती हैं।

इक्कीस–इस ब्रह्माण्ड की सामग्री इक्कीस प्रकार की कहलाती हैं जिसमें से एक प्रकृति, बुद्धि और जीव तीनों मिलके एक हैं, क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है। दूसरा श्रोत्र, तीसरा त्वचा, चौथा नेत्र, पांचवां जिह्वा, छठी नासिका, सातवीं वाक्, आठवां पग, नौवां हाथ, दशमी गुदा, ग्यारहवां उपस्थ, जिसको लिंग इन्द्रिय कहते हैं, बारहवां शब्द, तेरहवां स्पर्श, चौदहवां रूप, पन्द्रहवां रस, सोलहवां गन्ध, सत्रहवीं पृथिवी, अठारहवां जल, उन्नीसवीं अग्नि, बीसवीं वायु, इक्कीसवां आकाश। ये इक्कीस (समीधा) पदार्थों में (विश्वा) सभी (रुपाणी) रूपों को (विभ्रताः) धारण करते हुए, (परियन्ति) सर्वत्र समा रहे हैं, (तेषाम्) उन पदार्थों के (बलाः) बलों को (वाचस्पति) वेद ज्ञान का उपदेशक परमात्मा (अद्य) अज (में) मेरे (तन्वः) शरीर में, (दधातु) धारण करावें। इस प्रकार ईश्वर इन विभिन्न 21 रूपों में

सारे जगत् में व्याप्त होकर इसे धारण कर रहा है। वही ईश्वर मेरे मन आत्मा और शरीर में बसा रहे।

भावार्थ :– आशय यह है कि तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो भी पदार्थ संसार की स्थिति के कारण हैं, उन सबका तत्त्व ज्ञान (वाचस्पतिः) वेद वाणी के स्वामी सर्वगुरु जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करें और उस अन्तर्यामी पर पूर्ण विश्वास करके पराक्रमी और परोपकारी होकर सदा आनन्द भोगें।

इति स्वस्तिवाचनम्

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयम्। (1458)
हम आपकी सुमति के अनुसार वीर्यवाहन् होंवे।

पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति

वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति अंतिम दिन, प्रातःकाल में की जाती है। दैनिक यज्ञ के क्रियाकलाप में ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के बाद शांति प्रकरण पाठ करें।

(शान्तिप्रकरण के मन्त्रों में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ अथवा दिव्य शक्तियाँ हमारे अन्य सभी के लिये सुख शान्तिकारी होवें।)

शांति प्रकरण

ओ३म् शन्नः इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ।।1।।

ऋ० 7।35।1।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो ! (इन्द्राग्नि) विद्युत और साधारण अग्नि, (अवोभिः) रक्षण आदि साधनों से, (नः) हमारे लिए (शम्) सुख करने वाली, (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं के देने वाले (इन्द्रावरुणा) विद्युत और जल उपभोग द्वारा (नः) हमारे लिए (शं) सुखकारक होवें। (इन्द्रासोमा) सूर्य और चन्द्र (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (शंयोः) रोगादि को दूर करने के लिए (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों। (इन्द्रापूषणा) मेघ और पृथिवी (नः) हमारे लिए (वाजसातौ) अन्न–धन की प्राप्ति में, (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें।
भावार्थ :–हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से विद्वानों के संग रह कर अपने पुरुषार्थ से आपके रचे हुए बिजली आदि का प्रयोग करें। आप हमें इसम सफलता दो।

ओ३म् शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।2।।

ऋ० 7।35।2।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! जैसे (नः) हमारे लिए (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुख करने वाला हो (उ) और (नः) हमारे लिए (शंस) शिक्षा व प्रशंसा (शमु) सुख करने वाली हो। (उ) और (पुरन्धि) बुद्धिमान् विद्वान् (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाले (अस्तु) हों। (नः) हमारे लिए (रायः) धन ऐश्वर्य (शम्) सुख करने

वाले (उ) ही (सन्तु:) हों। (न:) हमारे लिए (सत्यस्य) यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की (सुयमस्य) सुन्दर नियम से प्राप्त होने योग्य व्यवहार की (शंस:) प्रशंसा (शम्) सुख देने वाली और (पुरुजात:) बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी परमात्मा (न:) हमारे लिए (शम्) आनन्द देने वाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ :— हे मनुष्य, तुम ऐश्वर्य, पुण्यकीर्ति, धन, धर्म, योग्य और न्यायाधीश सुख करने वाले बनने का प्रयत्न करो।

ओ३म् शन्नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शन्नो अद्रिःशन्नो देवानां सुहवानि सन्तु।।3।।

ऋ० 7।35।3।।

मन्त्रार्थ :— (न:) हमारे लिए (धाता) धारण करने वाला परमात्मा (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (धर्ता) संसार की पुष्टि करने वाला ईश्वर (न:) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (उरुचि) पृथिवी (स्वधाभि:) अन्नादि के साथ (न:) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाली (भवतु) हो। (बृहती) विस्तृत (रोदसी) पृथ्वी व प्रकाश सहित अन्तरिक्ष (न:) हमारे लिये (शम्) शांति देने वाले होवें, (अद्रि:) मेघ (न:) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हो, (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानी) शोभन आह्वान्=सुन्दर स्तुति गान (न:) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों।

भावार्थ :— हे मनुष्यो! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे तुम्हें पुष्टिकारकों से उपकार और सुख की प्राप्ति हो।

ओ३म् शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः।।4।।

ऋ० 7।35।4।।

मन्त्रार्थ :— हे प्रभो ! आपकी कृपा से (ज्योतिः अनीकः) ज्योति ही सेना के समान अर्थात् प्रकाशबल से सम्पन्न, (अग्नि:) वह अग्नि (न:) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (अश्विना) व्यापक पदार्थ (शम्) सुखदायक और (मित्रावरुणो) प्राण और अपान वायु (न:) हमारे लिए (शम्) सुखदायक होवें। (न:) हम (सुकृताम्) शुभ काम करने वालों के (सुकृतानि)

सत्कर्म=धर्माचरण (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों और (इषिरः) शीघ्र गमनशील (वातः) वायु (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हो और (अभिवातु) सब ओर बहती रहे।
भावार्थ :– हम सब अग्नि और वायु आदि दिव्य पदार्थों के गुणों को जानकर ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

ओ३म् शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शन्न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शन्नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।5।।

ऋ॰ 7।35।5।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से (पुर्वहूतौ) जिन पूर्व पुरुषों की प्रशंसा होती है उसमें (द्यावापृथिवी) द्यु और भूमि (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी हों, (अन्तरिक्षम्) भूमि और सूर्य के बीच का आकाश (नः) हमारे (दृशये) नेत्र दृष्टि के लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, और (औषधीः) औषधि तथा (वनिनः) वन जिंनमें विद्यमान् वे वृक्ष (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें, (रजसः) लोकों में उत्पन्न हुओं का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) जयशील परमात्मा (नः) हमें (शम्) शांति–(अस्तु) देवे।
भावार्थ :– जो कार्य के आरम्भ में बुलावे, सूर्य, भूमि और मध्यलोक शांतिदायक हों! औषधियाँ अंन्नादि और उन के पदार्थ हमें शान्तिदायक हों, विद्वान् इन सभी वस्तुओं का गुण जान ठीक प्रयोग करके उनसे सुख लाभ कर सकते हैं।

ओ३म् शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शन्नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु।।6।।

ऋ॰ 7।35।6।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपके सहाय से (इह) यहाँ (वसुभिः) पृथिव्यादिकों के साथ अर्थात् अपने बसाने वाले गुणों के साथ (देवः) प्रकाशयुक्त (इन्द्रः) बिजली व सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों और (आदित्येभिः) संवत्सर के महीनों के साथ (सुशंसः) प्रशंसित–प्रशंसा करने योग्य (वरुणः)

जल –समुदाय (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो। (रुद्रः) जीवात्मा (रुद्रेभिः) प्राणों के साथ (जलाषः) दुःखनिवारण करने वाला अपने गुणों के साथ इस संसार में (नः) हमारे लिए (शम्) शान्ति देने वाला हो, (त्वष्टा) सर्व वस्तुविच्छेद करने वाला अग्नि के समान परिक्षक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से निकली प्रार्थना को इस स्थान पर (नः) हमारे (शं) सुखार्थ (श्रृणोतु) सुनें।

भावार्थ :– जो पृथ्वी, आदित्य और वायु की विद्या को जानकर उसके द्वारा ईश्वर, जीव और प्राणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। परीक्षा करके विद्वान् और उद्योगी बनते हैं वे सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

ओ३म् शन्न सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शन्नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शन्नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः।।7।।

ऋ॰ 7।35।7।।

मन्त्रार्थ :– हे (सोमः) सोम स्वरूप परमात्मन् ! (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (ब्रह्म) वेद ज्ञान (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिकारक हो, (ग्रावाणः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (सन्तु) हो, (यज्ञाः) अग्निहोत्र आदि से शिल्पयज्ञ पर्यन्त (नः) हमारे लिए (शम् उ) सुखकारक ही हो। (स्वरूणाम्) यज्ञशाला के स्तम्भ शब्दों के (मितयः) प्रमाण हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हो, (प्रस्वः) जो उत्पन्न होती है वह औषधि (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हो (उ) और (वेदिः) यज्ञ की वेदी हमारे लिए (शम् उ) सुखकारी ही (अस्तु) हो।

भावार्थ :– जो मनुष्य विद्या, औषधि, धन और यज्ञादि से जगत् का सुख के साथ उपकार करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं।

ओ३म् शन्नः सूर्य उरुचक्षा उदैतु शन्नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शन्नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शन्नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।8।।

ऋ॰ 7।35।8।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो ! (उरुचक्षा) जिससे बहुत पदार्थों के दर्शन होते हैं, वह

(सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (उदेतु) उदय हो, (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाएँ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों। (ध्रुवयः) अपने–अपने स्थान में स्थिर (पर्वताः) पर्वत (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) होवे, (सिन्धव) नदी वा समुद्र (नः) हमारे लिये सुखकारक और (आपः) जल वा प्राण (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक (उ) ही (सन्तु) होवें।

भावार्थ :– जो जगदीश्वर से बनाए हुए सूर्यादिकों से उपकार ले सकते हैं वे इस जगत् में श्री, राज्य और कीर्ति वाले होते हैं।

ओ३म् शन्नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शन्नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शन्नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शन्नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।9।।

ऋ॰ 7।35।9।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! जैसे (अदितिः) विदुषी माता (व्रतेभिः) अच्छे कामों के साथ (नः) हम को (शम्) सुखकारक (भवतु) हों और (स्वर्काः) सुन्दर विचार हैं जिनके वे (मरुतः) प्राणों के समान प्रियजन अच्छे कामों के साथ (शम्) शान्तिकारक (भवन्तु) होवे। (विष्णुः) सर्वव्यापक जगदीश्वर (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो, (उ) और (पूषा) पुष्टि करने वाला ब्रह्मचर्यादि व्यवहार (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (उ) ही (अस्तु) हो, (भवित्रम्) होनहार काम (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक होवे (उ) और (वायुः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी (उ) ही (अस्तु) हो।

भावार्थ :– माता आदि विदुषियों की कन्या और विद्वान् पिता आदि के पुत्र अच्छे प्रकार शिक्षा देने के योग्य हैं जिससे वे भूमि से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों की विद्याओं को पाकर धार्मिक बनकर सब को आनन्द दें।

ओ३म् शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शन्नो भवन्तूषसो विभातीः।
शन्नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शन्नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः।।10।।

ऋ॰ 7।35।10।।

मन्त्रार्थ :– हे विद्वानो! हमको, तुम वैसी शिक्षा देवो जैसे (त्रायमाणः) रक्षा

करता हुआ (सविता) सकल जगत् की उत्पति करने वाला ईश्वर (देवः) जो कि सब सुखों का देने वाला आप ही प्रकाशमान, वह (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (विभातीः) चमकती हुई (उषसः) प्रभातवेला (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (पर्जन्यः) मेघ (प्रजाभ्यः नः) हम प्रजा जनों के लिये (शम्) सुखदायक (भवतु) हो और (क्षेत्रस्यपतिः) जिसके बीच में निवास करते हैं उस जगत् का स्वामी ईश्वर वा राजा (शम्भुः) सुख की भावना करने वाला (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो।

भावार्थ :– विद्वान् लोगों को वेदादि सत्य विद्याओं के उपदेश से पदार्थों के गुण, कर्म स्वभाव बताएं जिससे वे लोग उनका ठीक–ठीक उपयोग करके सुखी होवें।

ओ३म् शन्नों देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शन्नों दिव्याः पर्थिवाः शन्नो अप्याः।।11।।

ऋ॰ 7।35।11।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! हमारे शुभ गुणों के आचार से (देवाः) विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले (विश्व देवाः) सब विद्वान् जन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें, (सरस्वती) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारक (अस्तु) हो। (अभिषाचः) जो अन्तरात्मा मे सम्बन्ध करते हैं, वे योगी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक हों और (रातिषाचः) विद्यादि दान का सम्बन्ध करने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (उ) ही होवें तथा (दिव्याः) आकाशीय पदार्थ (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक हों और (अप्याः) जलीय पदार्थ (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारक हों।

भावार्थ :– मनुष्यों को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे उन्हें विद्या, सुबुद्धि, सुवाणी देने वाले विद्वान् योगीजन प्राप्त हों तथा दिव्य पदार्थ श्रेष्ठ, गुण भी मिलें।

इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु। (1589)

यहाँ हमारा यज्ञ करने वाला विद्वान् होवे।

ओ३म् शन्नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शन्नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शन्नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शन्नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।12।।

ऋ० 7।35।12।।

मन्त्रार्थ :– हे जगदीश्वर! जैसे (सत्यस्य) सत्य भाषण आदि व्यवहार के (पतय) पालन करने वाले पुरुष (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें, (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (गावः) दूध देती हुई गोऐं (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक (उ) ही (सन्तु) हों। (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ता) सुन्दर अच्छे कामों में हाथ डालने वाले (ऋभवः) बुद्धिमान्जन (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक हों, (हवेषु) हवन आदि अच्छे कामों में (पितरः) पितृजन माता–पिता (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें।

भावार्थ :– मनुष्य सुशील बनें, जिससे वे सब सज्जनों, पितृजनों तथा पशुओं को भी प्रसन्न रख सकें।

ओ३म् शन्नो अज एकपाद् देवो अस्तु शन्नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शन्नो अपां नपात्पेरुरस्तु शन्नः पृश्निर्भवतु देवगोपा।।13।।

ऋ० 7।35।13।।

मन्त्रार्थ :– हे विद्वानो! तुम वैसी शिक्षा देवो जैसे, (नः) हमारे लिए (अजः) जो कभी नहीं उत्पन्न होता वह प्रभु (एकपाद्) जिसके एक पैर में सब जगत् विद्यमान् है अर्थात् एक मात्र रक्षक वह (देवः) देव (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (बुध्न्यः) अन्तरिक्षस्थ (अहिः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक हो, (समुद्रः) सागर (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक हो। (अपाम्) जलों का (पेरुः) पार करने वाला (नपात्) पैर जिसके नहीं हैं, वह नौका (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (देवगोपा) और देवरक्षक (पृश्निः) अन्तरिक्ष आकाश हमारे लिए (शम्) सुखदायक (भवतु) हो।

भावार्थ :– दिव्य गुणों की नौका पर बैठ कर ही मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से पार होता है। इसलिए हम ईश्वर तथा विद्वानों से ऐसी शिक्षा की कामना करते हैं जो हमारे अन्दर दया, क्षमा, उदारता आदि दिव्य गुणों को उत्पन्न करें और सबके रक्षक बनें।

ओ३म् इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।14।।

यजु॰ 36।8।।

मन्त्रार्थ :– हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान है। उन आपकी कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) दो पैर वाले प्राणी, पुत्रादि के लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) होवें और हमारे (चतुष्पदे) चार पैरों वाले गौ आदि प्राणियों के लिए (शम्) सुखदायक होवें।

भावार्थ :– परमेश्वर ही सब प्रकार के सुख देने वाला है। इसलिए हम सदा उसी की उपासना करें।

ओ३म् शन्नो वातः पवता थ्वं शन्नस्तपतु सूर्य्यः।
शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो॑ऽअभिवर्षतु।।15।।

यजु॰ 36।10।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभु जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले, (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे। (कनिक्रदत्) गरजता हुआ (देवः) उत्तम गुण युक्त विद्युत रूप अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्य) मेघ हमारे लिये (अभिवर्षतु) सब ओर से वर्षा करे।

भावार्थ :– मनुष्य को ऐसे काम करने चाहिए जिससे वायु, सूर्य, मेघ सब के लिए सुखरूप हों।

ओ३म् अहानि शं भवन्तु नः श थ्वं रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽइन्द्रावरुणा रातहव्या।
शन्नऽइन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः।।16।।

यजु॰ 36।11।।

मन्त्रार्थ :– हे परमेश्वर जैसे (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिए (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हो, (रात्रीः) रातों में हम (शम्) सुख (प्रतिधीयताम्) धारण करें। (इन्द्राग्नी) बिजली

और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें, (रातहव्या) ग्रहण करने पदार्थों को देने वाले वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत और जल (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी हों। (वाजसातौ) अन्नों के सेवन हेतु संग्रामों में (इन्द्रापूषणा) विद्युत और पृथ्वी (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी होवें और (इन्द्रासोमा) बिजली और औषधियाँ (शम्) सुखकारिणी हों।

भावार्थ :– यदि हम ईश्वर की आज्ञा का पालन करें, विद्वानों की शिक्षा पर चलें तो हमें ब्रह्मांड के सभी पदार्थ सुखकारी हो सकते हैं।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः।।17।।

यजु॰ 36।12।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! आपकी कृपा से ये (देवीः आपः) दिव्यगुण युक्त जल (अभिष्टये) मनोवांछित आनन्द के लिए और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए अर्थात् प्यास के समय पानी पीने के लिए (नः) हमको (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) हो अर्थात् हमारा कल्याण हो तथा वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वत्र वृष्टि करें।

भावार्थ :– जो मनुष्य यज्ञ सन्ध्या करते हैं और शुद्ध जल का सेवन करते हैं उनको शारीरिक और आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष थं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं थं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।18।।

यजु॰ 36।17।।

मन्त्रार्थ :– हे जगदीश्वर ! (द्यौः शान्तिः) प्रकाशयुक्त पदार्थ शान्तिदायक हों। (अन्तरिक्षं शान्तिः) द्युलोक और पृथ्वीलोक के मध्य का भाग अन्तरिक्ष शान्तिकारक हो, (पृथिवी शान्तिः) भूमि शान्तिदायिनी हो, (आपः शान्तिः) जल सुखकारक हो, (औषधयः शान्तिः) सोमलता आदि औषधियाँ रोगनिवारक एवं शान्तिदायिनी हों। (वनस्पतयः शान्तिः) वट आदि वनस्पतियाँ सुखदायी हों, (विश्वेदेवाः शान्तिः) सब विद्वान् लोग सुख देने वाले एवं उपद्रव

निवारक हों। (ब्रह्म शान्तिः) वेद ज्ञान सुखकारी हो, (सर्वं शान्तिः) संसार के सब पदार्थ सुखवर्द्धक हों (शान्तिः एवं शान्तिः) शान्ति ही शान्तिकारक हो, (मा) मुझको (एधि) प्राप्त होवे, (सा) वह (शान्तिः) सबको प्राप्त होवे।

भावार्थ :– हम सबको ऐसे कार्य करने चाहिए कि प्रकाश आदि सभी पदार्थ सुख शान्ति देने वाले हों। शान्ति का अर्थ है अनुकूलता, समता। जब तक हम सभी प्रकार के पदार्थों को पुरुषार्थ, ज्ञान और तप से अनुकूल नहीं बनाते उनके साथ समता प्राप्त नहीं करते हमें सुख अथवा शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत थं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।19।।

यजु. 36।24।।

मन्त्रार्थ :– इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मयज्ञ में देखें।

भावार्थ :– हे प्रभो ! आप शुद्ध प्रकाशक हो, विद्वानों के हितकारी हो। अतः हम नीरोग और स्वावलम्बी रहकर सौ वर्ष तक आप को ही सर्वत्र देखें, सुनें और चर्चा करते रहें, यदि आप की कृपा हो तो सौ वर्ष से भी अधिक पवित्र जीवन व्यतीत करें। सदा आनन्द भोगें और दूसरों को भी आनन्दित करें।

{मन :– जीवात्मा का साधन, अतिशय गमनशील, अपूर्व बलशाली, अन्तर्ज्योतिः ज्ञान–यज्ञ का साधक एवं नियन्त्रक है।}

(मन्त्र 20 से 25 तक रात्री को सोने से पहले उच्चारण करें।)

ओ३म् यज्जाग्रतो दुरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।20।।

यजु. 34।1।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो ! आपकी कृपा से (देवम्) आत्मा में रहने वाला वा जीवात्मा का साधन (यत्) जो मन (जाग्रत) जागते हुए का (दूरम्) आत्मा के स्थान से दूर–दूर (उत् एति) भागता है (उ) और (तत्) वही (सुप्तस्य) सोये हुए का (तथैव) उसी प्रकार से फिर (एति) आत्मा के भीतर चला

जाता है। वही जाग्रत एवं स्वप्न अवस्था में (दूरङ्गमम्) शरीर से बाहर भी गमन करता है (ज्योतिषाम्) ज्ञानेन्द्रियों=आँख, कान, नाक, जिव्हा एवं त्वचा का (एकः) अकेला ही (ज्योतिः) प्रकाशक है उसी की सहायता ये इन्द्रियाँ अपना काम करती हैं, (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प, विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पमस्तु) कल्याणकारी धर्म विषयक वृत्ति वाला होवे।

भावार्थ :– जो मनुष्य मन को शुद्ध रखते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मेरा मन सदा शुभ विचारों वाला ही रहे क्योंकि यह मन ऐसा है जो जागता हुआ भी दूर–दूर जाता है और सोता हुआ भी, ज्योतियों की ज्योति है, सभी इन्द्रियों को गति देने वाला है। दूर–दूर जाता है। वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।21।।

यजु॰ 34।2।।

मन्त्रार्थ :– हे जगत्पते ! (येन) जिस मन के द्वारा (अपसः) सत् कर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले धीर पुरुष (यज्ञे) अग्निहोत्रादि व श्रेष्ठ कर्मों में तथा (विदथेषु) विज्ञान सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्मणि) इच्छित कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं। (यत्) जो मन (अपूर्वम्) अद्भुत सामर्थ्ययुक्त (प्रजानाम्) देहधारी प्राणीमात्र के (अन्तः) भीतर हृदय में (यक्षम्) सगंति और पूजा के योग्य है। (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिवसङ्कल्पमस्तु) कल्याणकारी धर्म के ग्रहण और अधर्म के त्याग वाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ :– मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखें। जो मेरा मन प्राणियों के भीतर अद्भुत और पूजनीय है। वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।22।।

यजु॰ 34।3।।

मन्त्रार्थ :– हे सर्वप्रेरक प्रभो! (यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) ज्ञान का उत्तम साधन (उत्) और (चेतः) सुमति का साधन (धृति) धैर्यरूप (च) और (यत्) जो (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा के साथ होने से (अमृतम्) अमृत्, जीवनदायी (ज्योतिः) प्रकाशमान है। (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किञ्चन) कोई भी (कर्म) कार्य (न क्रियते) नही किया जाता। (तत्) वह (में) मेरा (मनः) सब कर्मों का साधनरूप मन (शिवसङ्कल्पमस्तु) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ :– अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृति वाला है, चार प्रकार से भीतर प्रकाश रहता है। प्राणियों के समस्त कर्मों का साधक मन है वह शुभ विचारों वाला रहे।

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।23।।

यजु॰ 34।4।।

मन्त्रार्थ :– हे सर्वेश्वर ! (येन) जिस (अमृतेन) अमृतरूप मन से (भूतम्) व्यतीतकाल (भुवनम्) वर्तमानकाल और (भविष्यत्) भविष्यकाल आगे आने वाला काल (इदम्) यह (सर्वम्) सब त्रिकाल वस्तु मात्र (परिगृहीतम्) ग्रहण किया जाता है, जाना जाता है। (येन) जिसके द्वारा (सप्त होता) सात {पाँच ज्ञानेन्द्रिय, आत्मा और बुद्धि} इन होताओं वाला वह (यज्ञः) जीवन यज्ञ (तायत) बढ़ाते हैं (तत्) वह (में) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त मन (शिवसंकल्प) मोक्षरूप संकल्पवाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ :– जो चित्त योगाभ्यास से सिद्ध हो चुका है, जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों को जान जाता है, योगबल से सब सृष्टि को जानने वाला, जो ज्ञान, कर्म, उपसना का साधन है, वह सदा शुभ विचारों से भरा रहे। मोक्ष प्राप्ति के संकल्प वाला हो।

ओ३म् यस्मिन्नृचः सामयजूं ᳞ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्त ᳞ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।24।।

यजु॰ 34।5।।

मन्त्रार्थ :– हे सर्वज्ञ वेद ज्ञान के दाता भगवन् ! (यस्मिन्) जिस मन में (रथना भौ) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में लगे हुए (अरा–इव) अरों की भाति (ऋचः) ऋग्वेद, (साम) सामवेद, (यजूंषि) यजुर्वेदरूप ज्ञान (प्रतिष्ठिता) अच्छी प्रकार स्थित है। और (यस्मिन्) जिस मन में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) सम्पूर्ण (चित्तम्) सर्व पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान [स्मरण शक्ति] (ओतम्) ओत–प्रोत है अर्थात् माला के मणकों की भाँति पिरोया हुआ है (तत्) वह (में) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचारक शुभ संकल्प वाला (अस्तु) होवे।
भावार्थ :– रथ के पहियों में लगे अरे की तरह जिस मन में ऋग्, यजुः, साम, अथर्वादि का ज्ञान भण्डार रहता है और सब पदार्थों का ज्ञान ओत–प्रोत है वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् सुषारथिरश्वांनिव यन्मंनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुंभिर्वाज़िनं इव हृत्प्रतिष्ठं यदंजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ।।25।।

यजु. 34।6।।

मन्त्रार्थ :– हे सर्वनियन्तः प्रभो ! (सुषारथिः इव) जैसे चतुर सारथि (वाजिनः) वेग वाले (अश्वान) घोडों को (अभीशुभिः) लगामों के द्वारा (नेनीयते) वश में करके चलाता है, उसी प्रकार (यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों, प्राणीमात्र को इधर उधर विचार क्षेत्र में घुमाता है और जो (हृत्यप्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित है। जो (अजिरम्) विषयादि मे प्रेरक सदा युवा रहने वाला (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसकङ्ल्पमस्तु) मंगलमय नियमों से प्रेम करने वाला (अस्तु) होवे।
भावार्थ :– जो मन एक अच्छे सारथि की भँाति मनुष्यों को इधर–उधर घुमाता रहता है। बड़ा बलवान् और इन्द्रिय रूपी घोड़ों का चलाने वाला है। हृदय में रहता है, सदा युवकों की भांति आशापूर्ण रहकर काम करवाता है वह मेरा मन कल्याणकारी विचारों वाला हो ताकि उसकी प्रेरणा से हम सदा शुभ कर्म ही करते रहें।

1 2 3 2 3 3 1 2र 3 1 2र
ओ३म् स नः पवस्व शङ् गवे शं जनाय शमर्वते।
1 2 3 1 2
शꣳराजन्नोषधीभ्यः ।।26।।

सामः उत्तरार्चिके।1।3।।

मन्त्रार्थ :– हे (राजन) संसार के शासक प्रभो! (सः) आप (नः) हमको (पवस्व) पवित्र करें, (गवे) गौ आदि दुधारु पशुओं के लिये (शम्) कल्याण करें, (जनाय) मनुष्य मात्र के लिये (शम्) कल्याण करें, वाहन के योग्य (अर्वते) घोड़े आदि पशुओं के लिये (शम्) कल्याण करें, (औषधिभ्यः) वनस्पति, वृक्षादि के लिये भी (शम्) शान्ति दीजिए।

भावार्थ :–हे प्रकाशमान प्रभो ! हमारी सुख समृद्धि को बढ़ाने के लिये हमारी गऊ, घोड़े तथा जनसमूह का कल्याण करते रहो।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।।27।।

अथर्व॰ 19।15।5।।

मन्त्रार्थ :– हे भगवन् ! आप (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय प्रदान करने वाला (करति) करते हैं, बनाते हैं, (इमे) इन (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (अभयम्) अभय कीजिए। (पश्चात्) पश्चिम या पीछे से (अभयम्) निर्भयता प्राप्त हो, (पुरस्तात्) पूर्व या सामने से (अभयम्) अभय होवे, (उत्तरात्) उत्तर या ऊपर से तथा (अधरात्) दक्षिण या नीचे से (नः) हमको सब जनो को (अभयम्) निर्भय (अस्तु) कराइये।

भावार्थ :– हे परमेश्वर हम ऐसे कार्य करें कि हमें वायुपण्डल, पृथिवी आकाश आदि से और सब दिशाओं से भय रहित करो। ज्ञान और कर्म के शुद्ध होने पर मनुष्य सब और से निर्भय रहता है।

ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।28।।

अथर्व॰ 19।15।6।।

अरिष्टाःस्याम तन्वा सुवीराः (5.3.5)
हम शरीर से स्वस्थ तथा साहसी वीर बनें।

मन्त्रार्थ :– हे भगवन् ! आपकी कृपा से (नः) हमको (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न रहे, (अमित्रात्) शत्रु का भी (अभयम्) डर न हो, (ज्ञातात्) जानकार से (अभयम्) न डरें, (परोक्षात्) अपरिचितों से (अभयम्) न डरें, (नक्तम्) रात्री में (अभयम्) न डरें, (दिवा) दिन में भी (अभयम्) न डरें, (सर्वा) सारी (आशा) दिशाएं, सभी ओर के वासी (मम) मेरे (मित्रं) सच्चे मित्र (भवन्तु) हों।
भावार्थ :– सब को अपने अनुकूल बनाकर हम सदा निर्भय रहें। प्रभु हमें ऐसी शक्ति तथा बुद्धि दे।

।। इति शान्तिकरणम् ।।

देवो भूत्वा देवं यज्ञेतम् (ऋग्वेद)

"देवता बन कर देवता की पूजा करें।"

ऋत्विग्वरण

यजमान ऋत्विक् को कर्म कराने की इच्छा, स्वीकार करने की प्रार्थना करें। निम्न मन्त्र का उच्चारण करें –

"ओ३म् आवसोः सदने सीद।"

ओ३म् का स्मरण करके आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हे ब्रह्मन् ! आप (वसोः) यज्ञ के (सदने) शुभासन पर (आ) कर्म के आरम्भ से कर्म की समाप्ति तक (सीद) विराजें।

ऋत्विग् बोले – **"ओ३म् अह्मस्मिन आसने सीदामि"** ओ३म् को स्मरण करते हुए मैं बैठता हूँ। निश्चित किए हुए आसन पर बैठता हूँ।

यजमान बोले – **"अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे।"**

(अहम्) मैं (अद्य) आज (उक्त कर्मकरणाय) इस यज्ञ कर्म को करने के लिए (भवन्तम्) आपको (वृणे) स्वीकार करता हूँ।

ऋत्विग् बोले – **"वृतोऽस्मि" मुझे स्वीकार है।"**

"संकल्प"

(इस कर्म से यह इष्ट फल प्राप्त होगा इसको संकल्प कहते हैं।)

(ब्र. कृष्णदत्तजी महाराज)

मुख्य यजमान अपनी पत्नी को दायें (दक्षिणायन) ओर रख कर, यज्ञवेदी के पश्चिम आसन पर खड़े हों। दोनों अपनी अंजलि में लिए चावलों पर जल छिड़क कर (उद्देश्य है कि हे प्रभु! हमें अन्नजल से भरपूर कर) संकल्प उच्चारण करें।

पुरोहित का वरण जब तक यजमान न कहे तब तक स्वयं आसन पर जाकर पुरोहित न बैठे और विधि की सम्पन्नता के लिए वरण क्रिया सब विशिष्ट यज्ञों में अवश्य करावे। इसमें संकोच न करे क्योंकि पुरोहित वैदिक कर्मकाण्ड की मर्यादाओं का रक्षक है।

वयं देवानां सुमतौ स्याम् । (6.47.2)
हम देवों की सुमति में रहें।

ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे। (1,97,29,49,107 सृष्टि संवत्सरे 2064 विक्रमाब्दे (183 दयानन्दाब्दे...........अयने........ऋतौ.........मासे........पक्षे.........शुभतिथौ ....दिवसे......नक्षत्रे, आर्यावर्त देशान्तर्गते...........प्रदेशे..........मण्डले.............नगरे/ग्रामे, श्रीमतः..............इत्यस्य पोत्रः, श्रीमतः...........इत्यस्यपुत्रः, गोत्रोत्पन्नः..................नामा अहं..............उपलक्ष्ये यज्ञ कर्म करणार्थ शुभ संकल्पं धारयामि।

चावल यज्ञ कुंड को अर्पित कर इस संकल्प को धारण करके सब यजमान तथा ऋत्विज जन भी स्व–स्व आसनों पर बैठ कर आचमन करके अंग स्पर्श करें। आचमन उतने जल को हथेली में ले के उसके मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगाके करें कि वह जल कंठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कंठस्थ कफ और पित्त निवृति थोड़ी–सी होती है। (स॰प्र॰ तीसरा समु॰)

आचमन

शान्तचित्त होकर शुद्ध आसन पर बैठें, निर्मल जल से निम्न मन्त्रा के उच्चारण के साथ तीन बार आचमन करें –

(आचमन मन्त्र)

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।।1।। (पहला)

मन्त्रार्थ – (ओ३म्) हे सर्वरक्षक (अमृत) अमर अमृतरूप प्रभो ! यह जल, प्राणी मात्र का (उपस्तरणम्) आश्रय भूत, बिछोना (असि) है, (स्वाहा) यह मेरा कथन सत्याचरण युक्त क्रिया वाला हो।

भावार्थ :– हे जल ! तू प्राणियों के आधार अर्थात् आश्रयभूत हो। यह कथन शुभ हो।

"ओ३म् तत् सत्"। "सत्" – सृष्टा है, "तत्" सृष्टि है और जिसकी सृष्टि हो रही है, वही "ओ३म्" है। ओ३म् उस सच्चाई की अभिव्यक्ति है, जिसका न कोई आकार है, न कोई रूप है और जो माया से परे है। "ओ३म्" सर्वशक्ति का द्योतक है।

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में संकल्पोच्चारण की प्रथा को आर्यों के आदि सृष्टि के इतिहास से लेकर बोलते रहने को प्रशस्य बताया है तथा किसी भी प्रकार से इस व्यवस्था के भंग करने को अनुचित करता है।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।2।।

मन्त्रार्थ :– हे सर्वरक्षक (अमृत) अमर अमृतरूप प्रभो ! यह जल प्राणी मात्र का (अपिधानम्) धारक, पोषक तथा रक्षक ओढ़ना (असि) है, (स्वाहा) यह मेरा कथन सत्याचरणयुक्त क्रिया वाला हो।

भावार्थ :– हे जल तू प्राणियों का पोषक अर्थात् रक्षक हो। हमारा यह कथन सत्य हो।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।3।।

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे सर्वरक्षक प्रभो ! (सत्यम्) सत्य–ज्ञान (यशः) यश–कीर्ति (श्रीः) ऐश्वर्य तथा (श्रीः) धन–सम्पदा (मयि) मुझमें (श्रयताम्) विद्यमान {स्थित} रहें। (स्वाहा) यह मेरा कथन सत्याचरण युक्त क्रिया वाला हो।

भावार्थ :– हे प्रभु ! मुझे सत्य कर्म के द्वारा यश, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो। यह कथन सत्य हो। (तैतिरिय आ॰ प्रा॰–10 अनु 32/35)

अङ्गस्पर्श मन्त्र

बाईं हथेली में थोड़ा सा जल लेकर दायें हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से नीचे दिये छः मन्त्रों से पहले दायाँ अँग स्पर्श तत्पश्चात् बांया अंग स्पर्श करें तथा सातवें से मार्जन करें। (इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की कृपा से सब इन्द्रियाँ बलवान् तथा पवित्र रहें। (पंचमहा)

(संस्कार विधि सा॰प्र॰)

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु ।।1।। (मुख)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे सर्वरक्षक परमात्मन् (में) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) बोलने की शक्ति सदा (अस्तु) स्थिर रहे।

ओ३म् नसोर्मेप्राणोऽस्तु ।।2।। (नाक के दोनों छिद्र)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे प्रभो ! (में) मेरे (नसोः) दोनों नासिकापुटों में (प्राण) जीवन धारण शक्ति (अस्तु) बनी रहे।

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।।3।। (दोनों आँखें)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे सर्वद्रष्टा भगवन् ! (मे) मेरी (अक्ष्णोः) दोनों आखों में (चक्षुः) दर्शनशक्ति (अस्तु) विद्यमान रहे।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः (7.52.8)
मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है और बायें हाथ में सफलता है।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।।4।। (दोनों कान)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे सब कुछ सुनने वाले देव ! (मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवण शक्ति (अस्तु) होवे।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।।5।। (दोनों भुजायें)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! (मे) मेरी (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल (अस्तु) विद्यमान रहे।

ओ३म् ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु।।6।। (दोनों जंघायें)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे अनन्त पराक्रमशील परमेश्वर ! (मे) मेरी (ऊर्वोः) दोनों जंघाओं में जीवन पर्यन्त (ओजः) बल पराक्रम एवं चलने–फिरने की शक्ति (अस्तु) बनी रहे।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।।7।।

(समस्त शरीर का मार्जन करें)

मन्त्रार्थ :– (ओ३म्) हे सब रोगनाशक परमवैद्य ! (मे) मेरा (तनूः) शरीर और उसके (अङ्गानि) अंग–प्रत्यंग (मे) मेरे (तन्वा) सम्पूर्ण शरीर के (सह) साथ (अरिष्टानि) रोग–रहित हृष्ट–पुष्ट (सन्तु) होवें। (पारस्कर गृह्य 2/3/25)

यज्ञोपवीत धारण

यज्ञोपवीत को दोनों हाथों में अँगूठे तथा कनिष्का उंगली के बाहर से लेकर तानें तथा निम्न मन्त्र उच्चारण के बाद गले में डाल दाईं भुजा के नीचे से निकाल कर पहन लें।

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।1।।

(पारस्कर गृह्य 2/11)

शब्दार्थ :– वैदिक कर्मकाण्ड के करने का अधिकार प्राप्त करने वाला, विद्या का चिह्न यह (यज्ञोपवीतम्) ब्रह्मसूत्र (परमम्) अत्यन्त (पवित्रम्) पवित्र है (यत्)

जो (प्रजापतेः) प्रजापति के (सहजम्) साथ विद्यमान तथा (पुरस्तात्) पूर्वकाल से चला आ रहा है। यह (आयुष्यम्) आयु को बढ़ाने वाला व (अग्रयम्) जीवन की उन्नति का साधक है, इसे कन्धे पर (प्रतिमुञ्च) छोड़ो या धारण करो, (यज्ञोपवीतम्) यह यज्ञोपवीत (शुभ्रम्) शुद्ध=निर्मल है, (बलम्) बल तथा (तेजम्) तेज को देने वाला (अस्तु) हो।।1।।

ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।।2।।

मन्त्रार्थ :– हे बालक ! तुम (यज्ञोपवीतम्) यज्ञोपवीत धारण करते (असि) हो, इस (यज्ञोपवीतेन्) यज्ञोपवीत के द्वारा मैं आचार्य (त्वा) तुझ को (यज्ञस्य) विद्यायुक्त होने व यज्ञ करने, कराने का अधिकार बनाने के लिए (उपनह्यामि) अपने समीप लाता हूँ।।2।।

(हे ब्रह्मसूत्र ! तू यज्ञोपवीत है, मैं तुझे यज्ञ कार्य के लिए धारण करता हूँ। मैं आज स्वयं यज्ञोपवीत से बँधता हूँ। ईश्वर करे कि आज जो मैं यज्ञोपवीत धारण कर रहा हूँ वह मेरे यज्ञ कार्य को सिद्ध करने में सहायक हो।)

नये यज्ञोपवीत को धारण करके निम्न सूत्र बोलकर पुराने यज्ञोपवीत को उतार दें :

एतावद् दिनं पर्यन्तं ब्रह्मत्वंधारितं मय, जीर्णत्वात् परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखं।

अर्थ – उस जीर्ण ब्रह्मसूत्र का अब सूत्रत्व से अधिक अन्य कोई महत्व नहीं रह जाता।

अग्न्याधान

मुख्य यजमान निम्नलिखित मन्त्र से अग्न्याधान करे :

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।। (गोभिल॰ गृ॰ प्र॰ 1 ख॰ 1 सू॰ 11।।)

अर्थ : ओ३म् सर्वरक्षक प्रभो! आपकी असीम अनुकम्पा से यह यज्ञ की अग्नि, भूः–पृथ्वी लोक, भुवः–अन्तरिक्ष लोक, स्वः–द्युलोक अर्थात् पृथ्वी से लेकर द्युलोक तक यज्ञीयकर्म के रूप में सुप्रसिद्ध हो और सदा श्रेष्ठ कर्म के सम्पादन के निमित्तं प्रसिद्ध हो।

भावार्थ :– हे प्रभो! आप सब चेतना–चेतन जगत् के जीवनाधार, पालनकर्ता और दुःखनिवारक हैं। आपकी कृपा से ही सब कार्य सम्पन्न होते हैं। अतः हम अग्निरूप आपको साक्षी करके यह शुभ कार्य आरम्भ करते हैं। हे प्रभो! हमारा यह श्रेष्ठतम कार्य निर्विघ्न हो।

विधि : (घृत के दीपक की लौ से, कपूर को पात्र में रख कर प्रज्वलित करें, तत्पश्चात् दीपक को ईशान में स्थापित कर दें।)

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।।

यजु॰ 3।5।।

अग्नि स्थापना–पूर्व प्रज्ज्वलित कपूर को मन्त्र के आदधे पद के उच्चारण के साथ यज्ञकुण्ड में स्थापित करें।

मन्त्रार्थ :– (ओ३म् भूर्भुवः स्वः) हे प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत् के जीवनाधार, दुःखनिवारक और पालनकर्त्ता हो। आपकी कृपा से, (द्यौरिव) आकाश में अनन्त सूर्यों के सर्वत्र फैले हुए प्रकाश के समान, (भूम्ना) विभु! आपके विशाल ऐश्वर्य से, (पृथिवीव) फैलाव में 'पृथ्वी के समान। मैं आपके

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः" इस मन्त्र से लेकर जल प्रोक्षण के मन्त्र–"ओ३म् देव सवितः प्रसुव" मन्त्र तक अग्न्याधान सम्बन्धित मन्त्र जाने। इसके अनुकूल ही सोलह–सोलह आहुतियों की गणना की गई है। (शंका समाधान लेखमाला)

जो तुल्य, समान, सदृश, इव इत्यादि शब्दों के बीच में आने से किसी दूसरे पदार्थ के समान बोध करावे वह उपमालंकार है। (ऋ.भू. अलंकार भेद–विषय)

(वरिम्णा) श्रेष्ठ गुणों से युक्त होऊँ और (ते) इस प्रत्यक्ष (तस्य) अप्रत्यक्ष अर्थात् इस पृथ्वी लोक एवं अन्तरिक्ष लोकों में स्थित (देवयजनी) जहाँ विद्वान्, देव लोग यज्ञ करते हैं, उस (पृथिवि) पृथ्वी के (पृष्ठे) धरातल पर, यज्ञ वेदी में. लोक–लोकान्तरों के अन्तर्गत रहने वाली उस (अन्नादम्) हव्य भक्षक (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न प्राप्ति के लिए (आदधे) धरता हूँ।

भावार्थ :– हे प्रभो ! आपकी बनाई इस धरती पर जहाँ सब विद्वान् लोग यज्ञ करते हैं, मैं अग्नि का आधान कर रहा हूँ। आप मुझे अन्न, ऐश्वर्य से भरपूर कीजिए, हे प्रभो ! मेरा मन आकाश जैसा विशाल तथा पृथ्वी जैसा धैर्य व सहनशील हो।

अग्निवर्धन विधि

(प्रज्वलित अग्नि पर पतली–पतली समिधायें लगा थोड़ा घृत डाल कर अगले मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि को तीव्र करें।)

**ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ꣳ सृजे थामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।**

यजु॰ 15।54।।

मन्त्रार्थ :– हे (अग्ने) यज्ञ अग्नि (उद्बुध्यस्व) अच्छी प्रकार प्रज्जवलित हो, (प्रतिजागृहि) जिसमें प्रत्येक समिधा प्रज्जवलित और खूब जागृत होकर मुझ यजमान को भी जागृत (चेतन) करे अर्थात् (त्वम्) तू, हे परमेश्वर ! इस यजमान के हृदय में प्रकाशित होइये और (इष्टापूर्ते) यज्ञादि के द्वारा लौकिक मनोरथों को पूरा करने वाले भगवन् ! आप मोक्ष के साधक कर्म (सं) को भली प्रकार (सृंजेथाम्) से सम्पन्न करें अर्थात् वैसे आप इष्ट सिद्ध कीजिए। (अयं) यह अग्नि (च) और (अस्मिन्) इसमें (अधि उत्तरस्मिन्) अति. सुन्दर उपासना योग्य (सधस्थे) यज्ञशाला स्थान में (विश्वे) समस्त (देवाः)

विद्वान् (च) और (यजमानः) यजमान (सीदत) सुख से वर्तमान हो अपने अपने नियत आसनों पर बैठें।

मन्त्रार्थ :– (उद्बुध्यस्वाग्ने) हे परमेश्वर ! हमारे हृदय में प्रकाशित होइये (प्रतिजागृहि) अविद्या की अन्धकार रूप निद्रा से हम सब जीवों को अलग करके, विद्या रूप सूर्य के प्रकाश से प्रकाशमान कीजिये कि जिससे (त्वामिष्टापूर्त्ते) हे भगवन् ! मनुष्यदेह, धारण करने वाला जो जीव है, जैसे वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सामग्री की पूर्ति कर सके, वैसे आप इष्ट सिद्ध कीजिए। (अस्मिन् सधस्थे) इस लोक और इस शरीर तथा (अध्युत्तरस्मिन्) परलोक और दूसरे जन्म में (विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत) आपकी कृपा से सब विद्वान् और यजमान अर्थात् विद्या के उपदेश का ग्रहण और सेवा करने वाले मनुष्य लोग सुख से वर्तमान सदा बने रहें, कि जिससे हम लोग विद्यायुक्त होते रहें। **(ऋ.भाष.भू.ग्रन्थ प्रमाण्य प्रामाण्य विषय)**

भावार्थ :– हे अग्नि ! तुम प्रज्वलित हो, तुम्हारी कृपा से यजमान यह यज्ञ सम्पन्न कर सकें। हमें सद्बुद्धि दीजिए, हम सब परस्पर मिलते रहें।

तीन समिधाधान

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से आठ–आठ अंगुल की तीन समिधा, यजमान, घृत में भिगो–भिगो कर यज्ञाग्नि में चढ़ावें :

**ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवे॒दस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय
चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम।।1।।**

आश्व.गृ.सू. 1।10।12।।

यज्ञ में तीन समिधाएँ दी जाती हैं उसका तात्पर्य यह है कि हमारे मन, वचन और कर्म से जो पाप होते हैं उनको तीन समिधाओं के द्वारा अग्नि में दग्ध करते हैं।

अग्नि पुंज में जब यह समिधा अग्नि की तरंगों का रूप धारण कर रही है, उन तरंगों में तुम्हारे तीन जन्मों के संस्कार का भाव आ रहा होता है।

जातवेद नाम की अग्नि वह होती है जो विचारी जाती है तथा विचारों से प्रदीप्त किया जाता है।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

पहली समिधा अग्नि में आहुति देव

मन्त्रार्थ :– हे (जातवेदः) सब पदार्थों में विद्यमान् परमेश्वर ! (अयम्) यह (आत्मा) मेरी आत्मा (ते) तेरे लिए (इध्म्) इन्धन स्वरूप है, (तेन) इसलिए मुझमें तू {समिधा में भौतिक अग्नि की तरह} (इध्यस्व) प्रकाशित हो तथा (वर्धस्व) मुझमें ज्ञान, प्रकाश आदि गुणों को प्रेरणा कर ताकि मैं कल्याण मार्ग में आगे (वर्द्धय) बढ़ूँ तथा (अस्मान्) हम सब याजकों को (इद्ध) निश्चय से (प्रजया) पुत्र–पौत्र, सेवक आदि प्रजा से, (पशुभिः) गौ आदि पशुओं से, (ब्रह्मवर्चसेन) वेद विद्या के तेज से, (अन्नाद्येन) और भोग्य अन्नादि पदार्थों से समृद्ध कर और (समेधय) यज्ञकुण्ड में प्रज्जवलित समिधा की भाँति हमारे जीवन में प्रकाश हो, ओज और तेज हो। (स्वाहा) मैं यह सच्चे हृदय से प्रार्थना करता हूँ, (इदम्) यह (समिधा) आहुति (अग्नये जातवेदसे) जातवेद अग्नि स्वरूप परमेश्वर के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे अग्निदेव! आप प्रकाशमय हैं। इस समिधा एवं घी से प्रदीप्त होइये और मेरी आत्मा जो ज्ञान प्राप्त करने योग्य है, इस अग्नि की आत्मा है। हमें पुत्र, पौत्र, सेवक, पशु, अच्छी प्रजा से, ब्रह्मविद्या के तेज से और अन्नादि से समृद्ध कर। साथ ही मेरा आत्मिक ज्ञान भी आपके सहयोग से बढ़ता जाये। यह आहुति ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापक प्रभु के लिए है मेरे लिए नहीं।

प्रजा का अर्थ – जिसे माता–पिता ने संकल्प लेकर, विशेष तैयारी से उत्पन्न किया है। जो सन्तान खेल–खेल में बिना किसी उद्देश्य से ऐसे ही उत्पन्न हो जाती है, वह प्रजा नहीं है।

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये– इदन्न मम।।2।।

यजु. 3।1।।

विधि :– इससे और अगले अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा अग्नि में आहुति देवें।

मन्त्रार्थ :– हे विद्वान् लोगो ! तुम (समिधा) समिधा और (घृत) घी से (अग्निम्) अग्नि को (बोधयत) चेताओ, अर्थात् प्रकाशित करो तथा (अतिथिम्)

अतिथि के समान यज्ञ अग्नि की (दुवस्यत) सेवा अर्थात् सम्मान करो और (अस्मिन्) इस यज्ञ अग्नि से (1 – सुगन्ध=कस्तूरी, केसर आदि, 2 – मिष्ठ=गुड़, शक्कर आदि, 3 – पुष्टिकारक घी, दूध आदि, 4 – रोग नष्ट करने वाली सोमलता अर्थात् गुडची=(गिलोय) आदि इन चार प्रकार के (हव्या) हवनीय पदार्थों से) (आजुहोतन) अच्छी प्रकार हवन करें।
भावार्थ :– हे यज्ञ करने वाले इस अग्नि को अपना अतिथिं समझ कर घी इत्यादि पदार्थों से इसको बढ़ावा दे।

ओ३म् सुसंमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।।3।।

यजु॰ 3।2।।

मन्त्रार्थ :– जब (सुसमिद्धाय) अग्नि पूर्णतः प्रदीप्त हो जाये (शोचिषे) शुद्ध एवं दोषनिवारक (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान् तथा इस (अग्नये) भौतिक अग्नि की ज्वालाओं में (तीव्रम्) अग्नि में तपाये (घृतम्) शुद्ध घी की (जुहोतन) यज्ञ में आहुति दो। (स्वाहा) इस भावना के साथ में यह आहुति समर्पित करता हूं। (इदम्) यह हवि (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान् (अग्नये) अग्निस्वरूप परमेश्वर के लिए है (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।
भावार्थ :– मनुष्यों को इस प्रज्वल्लित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने या शुद्ध किये पदार्थों को डालकर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिए।

(महर्षिभाष्य से उद्धृत)

ओ३म् तन्त्वां समिद्भिरङ्गिरो घृतेनं वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे–इदन्न मम।।4।।

यजु॰ 3।3।।

(इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें)

मन्त्रार्थ :– (त्वा) जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त करने व (यविष्ठ्य) पदार्थों के भेदन करने में अति बलवान है, वह अग्नि (बृहत्) बहुत बड़े रूप

में (शोच) प्रकाशित हो। (तम्) उस भौतिक अग्नि की ज्वालाओं को (समिद्भिः) काष्ठादि और (घृतेन) घी आदि से (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं। (स्वाहा) शेष पूर्ववत्।

भावार्थ :– हे अग्नि! तू गतिशील है अतः बल और ज्ञान की प्राप्ति के लिए हम घी आदि द्वारा तुझे बढ़ाते हैं।

घृताहुति मन्त्र

(इस मन्त्र को पाँच बार बोल कर पाँच घृत की आहुतियाँ देवें)

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे – इदन्न मम।।

आश्व.गृ. 1.10.12

पंचघृताहुति का उद्देश्य – "संवत्सर सीम्मोवै यज्ञः"

पांच ऋतुओं वाले संवत्सर में यज्ञ के तारतम्य या निरन्तरता को बनाये रखने के लिए यजमान पांच घृताहुतियों को देता है। यज्ञ और संवत्सर की समता पाई जाती है। पांच घृताहुतियों के द्वारा पांच ऋतुओं के संघातरूप संवत्सर की प्राप्ति यजमान को होती है, अतः यजमान पंच घृताहुति देता है।

हेमन्त–शिशिर अथवा शिशिर–बसन्त का एकीकरण किया जाए तो पांच ऋतुएं सिद्ध होती हैं। (बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर) (शतपथ ब्राह्मण 3।1।4।5।)

'यज्ञ रहस्य' में स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती का मन्तव्य निम्न है–

उक्त मन्त्र में याज्ञिक परमात्मा से पाँच बातों के लिए याचना कर रहा है, अतः वह इस मन्त्र को पाँच बार उच्चारण करता हुआ प्रत्येक वार एक–एक वस्तु के लिए विशेष चिन्तन करता है। वे पाँच वस्तुएँ हैं–

1. प्रज्या इध्यस्व – याज्ञिक प्रजा की कामना करता है।
2. पशुभिर्वर्धस्व – पारिवारिक कल्याणार्थ पशुओं की कामना।
3. ब्रह्मवर्चसेन इध्यस्व – ब्रह्मतेज से तेजस्वी बनें।
4. अन्नाद्येन वर्धस्व – अन्नादि से भरपूर होवें।
5. समेधय – यज्ञकुण्ड में प्रज्वलित समिधा की भाँति हमारे जीवन में प्रकाश हो, ओज और तेज हो।

जल प्रोक्षण

प्रोक्षणी पात्र लेकर इन मन्त्रों से वेदी (कुण्ड) के पूर्व दिशादि में इस प्रकार जल प्रोक्षण करें :

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व।। (गोभिल गृ॰ 1।3।1)

(पूर्व में दक्षिण से उत्तर की ओर अर्थात् आग्नेय कोण से आरम्भ होकर के ईशान कोण तक)

मन्त्रार्थ : हे (अदिते) अखण्ड परमात्मन्! (अनुमन्यस्व) यह यज्ञकर्म निर्विघ्नपूर्ण हो, ऐसी बुद्धि मुझे दीजिए।

भावार्थ :– जल ! तू ही अदिति के रूप में विद्यमान् है। यदि अदिति की किरणों के साथ में आपोमयी नहीं होगा तो ये जगत् नहीं रहेगा।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

द्रष्टव्य :– ओ३म् प्राची दिग्निर–रक्षितादित्या इषवः।।

आपने सूर्य को रचा है जिसके बाणरूपी किरणों के द्वारा पृथ्वी पर जीवन रूपी साधन आता है।

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व।। (गोभिल गृ॰ 1।3।2)

(पश्चिम में दक्षिण से उत्तर की ओर अर्थात् नैऋत कोण से आरम्भ होकर वायव्य कोण तक)

मन्त्रार्थ :– हे (अनुमते) अनुकूलमति के दाता प्रभो! आप (अनुमन्यस्व) ऐसी कृपा कीजिए, इस यज्ञ के सम्पादन में सबकी अनुमति हो, सबका सहयोग प्राप्त हो।

भावार्थ :– जल ! तू ही अन्नादि के रूप में विद्यमान् है। यदि अन्नादि नहीं रहेगा तो प्राण नहीं रहेगा। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

द्रष्टव्य :– ओ३म् प्रतीची दिग्–रक्षितान्नमिषव।।

अन्नादि साधनों के द्वारा हमारे जीवन की रक्षा करते कराते हैं।

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व।। (गोभिल गृ॰ 1।3।3)

(उत्तर में पश्चिम से पूर्व की ओर अर्थात् वायव्य कोण से आरम्भ हो करके ईशान कोण तक)

मन्त्रार्थ :– हे (सरस्वती) ज्ञानस्वरूप ईश्वर! (अनुमन्यस्व) यज्ञ करने के

लिए अनुकूल मति दीजिए, जिससे हम उस सम्पूर्ण क्रियाकलाप को नियमित रूप से कर सकें।

भावार्थ :– जल तू ही सरस्वती के रूप में विद्यमान् है। यदि सरस्वती नहीं रहेगी तो ज्ञान, कर्म और उपासना समाप्त हो जाएगी। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

ओ३म् देवं सवितः प्रसुवं यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।

यजु॰ 30।1।।

('देव सवितः प्रसुव' मन्त्र पाठ समाप्त हो जाने के पश्चात् ही उत्तर में पूर्व कोने से आरम्भ करके यज्ञ कुण्ड के चारों ओर अर्थात् ईशान दिशा से आरम्भ करके ईशान दिशा (कोने) पर ही छिड़काव समाप्त करो।)

मन्त्रार्थ :– हे (देव) प्रकाशस्वरूप (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ! (यज्ञपतिम्) यजमान को (भगाय) धन, ऐश्वर्य के लिए (प्रसुव) आगे बढ़ाइये तथा (यज्ञम्) यज्ञ को (प्रसुव) भली प्रकार सफल कीजिए। हे (दिव्यः) दिव्य गुण युक्त (गन्धर्व) पृथ्वी को धारण करने वाले (केतपूः) बुद्धि को पवित्र करने वाले परमेश्वर आप (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र कीजिए और हे (वाचस्पतिम्) वाणी के स्वामी आप (नः) हमारी (वाचम्) वाक् शक्ति को (स्वदतु) मधुर बनाइये।

भावार्थ :– हे सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर आप विद्या और शिक्षा को बढ़ाने वाला, राज्य की रक्षा के लिए यथा योग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला, धार्मिक जनों का रक्षक, परमेश्वर का उपासक, सब गुणों से भरपूर, राजा उत्पन्न कीजिए। (दयानन्द यजुर्वेद भाष्य)

मेखला की महत्ता–जल प्रोक्षण का याग से सम्बन्ध।

जैसे सृष्टि के आरम्भ में परमपिता परमात्मा ने पृथ्वी रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया, तो समुद्र उसकी मेखला बनाई, जो भी पृथ्वी पर विष उगलता है, वही ग्रहण कर लेता है, उसको अपने में समन्वय कर लेता है। तो विचार किया कि यजमान अपनी प्रदक्षिणा क्यों कर रहा है? हे अग्नि! तू ज्योतिवान् है, कहीं तेरे में विकृतता न आ जाए, इसलिए आपो की आवश्यकता है, आपो तेरे लिए है। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज)

घृताहुति मन्त्रः
आघारावाज्यभाग–आहुति

(ये आहुतियाँ यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग और दक्षिण भाग में दी जाती हैं। अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़ कर घृतपात्र में से स्रुवा को भर कर आहुति समर्पित करें।) (संस्कार विधि सामान्य प्रकरण)

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदन्नमम।।

गो.गृ. 1/8/5, 24–यजु. 10/5

विधि :–इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग पर प्रज्वलित समिधाओं पर पश्चिम से पूर्व की ओर आहुति समर्पित करें।

मन्त्रार्थ :– यह आहुति (अग्नये) अग्नि स्वरूप परमेश्वर के लिए (स्वाहा) सुहुत हो (इदम्) यह आहुति (अग्नये) यज्ञ अग्नि के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे प्रकाशक परमात्मा ! आपके लिए और इस अग्नि के लिए सुहुत हो मेरे लिए नहीं।

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय–इदन्न मम।।

यजु. 10/5

विधि :– इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधाओं पर पश्चिम से पूर्व की ओर आहुति समर्पित करें।

मन्त्रार्थ :– यह आहुति (सोमाय) शान्तिस्वरूप परमात्मा के लिए (स्वाहा) सुहुत हो (इदम्) यह आहुति (सोमाय) सोमसर्वेश्वर के लिए है (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– सोम रसादि के लिए और सौख्य गुण वाले परमात्मा की प्रीति के लिए सुहुत हो, मेरे लिए नहीं।

(और जो यज्ञ कुण्ड के मध्य में आहुतियाँ दी जाती हैं उनको 'आज्यभागाहुति' कहते हैं।) (संस्कार वि.सा.प्र.)

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदन्न मम।।

यजु॰ 18/28

मन्त्रार्थ :– यह आहुति (प्रजापतये) सृष्टिपालक परमात्मा के लिए (स्वाहा) सुहुत हो। (इदम्) यह आहुति (प्रजापतये) प्रजापालक के लिए है, (मम) मेरे लिए (न) नहीं।

भावार्थ :– हे प्रजापति यह आहुति आपके लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय–इदन्न मम।।

यजु॰ 22।27।।

मन्त्रार्थ :– यह आहुति (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (स्वाहा) सुहुत हो। (इदम्) यह आहुति (इन्द्राय) इन्द्र के लिए है, (मम) मेरे लिए (न) नहीं।

भावार्थ :– यह आहुति ऐश्वर्य वाले भगवान् के लिए है, मेरे लिए नहीं।

वेदी से उत्तर–दक्षिण भाग में आहुतियां क्यों?

पाठक यह जान लेवें कि यह यज्ञ विश्व ब्रह्माण्ड यज्ञ का अनुकरण मात्र अर्थात् नकल है तथा इन आहुतियों का उत्तर तथा दक्षिण दिशा से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु अग्नि और सोमस्वरूप ये दो आहुतियां वेदी के वाम–उत्तर और दक्षिण–दाएं भाग में यज्ञ की नेत्र स्थानीय होने से दी जाती हैं। तेज और सौम्यतायुक्त नेत्र को पाने की भावना से ये दो आघारावाज्याहुतियां दी जाती हैं। मनुष्य के दोनों नेत्रों के समान यज्ञ के दो नेत्र स्थानीय और ब्रह्माण्डरूपी यज्ञ की समता के रूप में ये दो आहुतियाँ दी जाती हैं। (तै.स॰ 1/6/2/3)

(संस्कार विधि में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं – 'इदन्न मम' यह वाक्य 'इदमग्नये' आदि वाक्यों से पृथक रूपेण प्रकाशित है। अतः पाठकगण ध्यान देवें 'इदमग्नये' इस वाक्य को बोलकर कुछ रुकें पुनः 'इदन्न मम' बोलें, अतः इकट्ठा साथ पढ़ना अशुद्ध है।)

महाव्याहृत्याहुति

व्याहृति–वि+आ उपसर्ग पूर्वक हृ धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाने से "व्याहृति" शब्द बना है। व्याहृति का अर्थ है कहना अर्थात् विशेष भाव या अर्थ को कहना। भूः, भुवः, स्वः का प्रयोग व्याहृति के रूप में होता है।

(घृत की अगली चार आहुतियाँ)

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभु तू (भूः) प्राणदाता है (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए यह (स्वाहा) आहुति दी जाती है। (इदम्) यह आहुति (अग्नये) अग्नि के लिए है, (इदम्) यह आहुति (मम) मेरे अकेले के लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे समस्त जगत् के जीवनाधार, ज्ञानस्वरूप भगवन् ! आपके लिए मैं (स्वाहा) आहुति देता हूँ। यह मेरे लिए नहीं है।

ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम।।

मन्त्रार्थ :– हे (भुवः) दुःख विनाशक प्रभु ! (वायवे) शरीर धारियों के जीवनाधार सूत्रात्मा वायु के लिए यह (स्वाहा) आहुति दी गई है। (इदम्) यह आहुति (वायवे) वायु की शुद्धि के लिए है, (इदम्) यह (मम) केवल मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे सब दुःखों से छुड़ाने वाले वायु के समान वेगवान् भगवान्! आपके लिए यह आहुति देता हूँ। यह मेरे लिए नहीं है।

ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम।।

मन्त्रार्थ :– हे (स्वः) सुखस्वरूप प्रभु ! (आदित्याय) सूर्य के लिए यह (स्वाहा) आहुति दी गई है। (इदम्) यह आहुति (आदित्याय) सूर्य के लिए है, (इदम) यह आहुति (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे अखिल विश्व के धारक सूर्यसम भगवन् ! आपके लिए मैं यह आहुति देता हूँ। यह मेरे लिए नहीं है।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम।।

गोभिल गृ.सू. 1/8/14

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो ! तू (भूः) प्राणदाता (भुवः) दुःखहर्त्ता, (स्वः) सुखस्वरूप है (अग्नि) अग्नि (वायव) वायु तथा (आदित्याय) सूर्य के लिए यह (स्वाहा) आहुति दी गई है (इदम्) यह आहुति अग्नि, वायु और सूर्य के लिए है। (इदम्) यह (मम) केवल मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे जग के जीवनाधार, सर्वदुःख विनाशक, विश्व के धारक हैं। ज्ञानस्वरूप वायु के समान, वेगवान, सूर्यसम भगवान् यह आहुति आपक लिए है, मेरे लिए नहीं।

कुछेक विद्वान्जन "यदस्य कर्मण." मन्त्र को प्रायश्चित आहुति का मन्त्र बताते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। यह प्रायश्चित आहुति का मन्त्र नहीं है। स्विष्टकृत और प्रायश्चित आहुति ये दोनों वस्तुतः भिन्न–भिन्न दो स्वतंत्र कर्म हैं। अतः महर्षि दयानन्द जी के इस आर्ष परम्परानुमोदित पद्धति के अनुसार संस्कार विधि में जहाँ उल्लिखित है वहीं पर ही इस स्विष्टकृत होमाहुति का देना श्रेयकर है।

दर्शपौर्णमासादि इष्टियों तथा अग्निष्टोमादि बड़े यज्ञों के बीच में मन्त्रोच्चारण या अनुष्ठान में जब किसी प्रकार की भूल हो जाती थी तब प्रायश्चित के मन्त्र ब्रह्मा तथा यजमान के लिए–
ऋग्वेद के मन्त्र द्वारा अनुष्ठानयोग्य कर्म में भूल होने पर – 'ओ३म् भूःस्वाहा'
यजुर्वेद के मन्त्र द्वारा अनुष्ठानयोग्य कर्म में भूल होने पर – 'ओ३म् भुवः स्वाहा'
सामवेद के मन्त्र द्वारा अनुष्ठानयोग्य कर्म में भूल होने पर – 'ओ३म् स्वः स्वाहा' कहकर प्रायश्चिताहुति देने का विधान किया है और यदि चारों वेदों [विज्ञानकाण्ड] अथर्ववेद, से अनुष्ठीयमान कर्म में भूल होती है तब 'ओ३म् भूर्भुवः स्वः स्वाहा' कहकर प्रायश्चिताहुति देने का विधान मिलता है। (कात्यायन श्रौत सूत्र अध्याय 25 काण्डिका सूत्र 5 से 8)

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः (10.8.44)

उस आत्मा को जानकर मनुष्य मुत्यु से नहीं डरता है।

स्विष्टकृदाहुतिमन्त्रः

(इष्ट सुख के देने वाले परमेश्वर को 'स्विष्टकृत' कहते हैं।)

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।। इदमग्नये स्विष्टकृते इदं न मम।

गृह्य. आश्वलायन 1।10।22, शतपथ 14।9।4।24।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! (यत्) जो (अस्य) इस (कमर्णः) यज्ञ कर्म के विषय में (अति अरीरिचम्) विधान से अधिक किया गया हो (यत् वा) अथवा (इह) इस कर्म में (न्यूनम्) कम (अकरम्) किया हो (सु–इष्ट–कृत्) सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करने वाले (अग्निम्) भगवन् ! आप उसे (विधात्) जानते हो, प्रभो! (मे) मेरे (सर्वम्) सम्पूर्ण यज्ञ कर्म को (सु–इष्टम्) शुभेच्छाओं से (सुहुतम्) जो मैंने हवन किया है उसको सफल (करोतु) करें।

(सु–इष्ट–कृते) शुभेच्छाओं को पूर्ण करने वाले ! (सु–हुत–हुते) या मेरे अच्छी प्रकार से किये हुवे हवन में सुहुत के ग्रहण करने वाले (सर्व–प्रायश्चित्त–आहुतीनाम्) समस्त प्रायश्चित् आहुतियों और (कामानाम्) समस्त शुभ कामनाओं के (समर्द्धयित्रे) पूर्ण करने वाले (अग्नये) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर आपके लिए यह आहुति देता हूँ। हे प्रभो ! आप (नः) हमारी (सर्वान्) सब (कामान्) कामनाओं को (समर्धय) पूर्ण करें (स्वाहा) इसी भावना से मैं कहता हूँ (इदम्) यह आहुति (सु–इष्ट–कृत्) सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करने वाले (अग्नये) अग्नि स्वरूप प्रभु के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

प्राजापत्याहुति

मन में बोल कर स्विष्टकृत आहुति के पश्चात् यज्ञकर्म के देव प्रजापति के लिये निम्न मन्त्र से एक मौन आहुति घृत से देवें: (संस्कार विधि सामान्य)

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा।। इदं प्रजापतये–इदन्न मम।

यजु 18/28, पारस्कर गृह्य 1।11।3।।

मन्त्रार्थ :– (प्रजापतये) प्रजापालक भगवन् ! आपके लिए यह (स्वाहा) आहुति समर्पित करता हूँ, (इदम् प्रजापतये) यह प्रजापति परमेश्वर के लिए है (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

पवमानाज्याहुति मन्त्र

(निम्न आहुतियाँ चौल समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं।)

(संस्कार वि. सामान्य)

केवल घृत से दें।

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बांधस्व दुच्छुनां स्वाहा।। इदमग्नये पवमानायं इदन्न मम।।1।।**

ऋ. 9/66/19

मन्त्रार्थ :– हे (भूः) प्राणों के प्राण (भुवः) दुःख विनाशक, (स्वः) सुख प्रदाता (अग्ने) अग्नि स्वरूप परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (आयुँषि) जीवनों को (पवस) पवित्र करते तथा आयु को बढ़ाते हो, सो आप हमको (ऊर्ज्जम्) बल (च) और (इषम्) अन्नादि (आसुव) प्राप्त कराइये और (आरे) दूर अथवा निकट (दुच्छुनाम्) दुष्ट विचारों व बुरा बर्ताव करने वाले पुरूषों के संग से (बाधस्व) दूर रखिये। (स्वाहा) यह आहुति इस पवित्र भावना से देता हूं, (इदम्) यह आहुति (पवमानाय–अग्ने) पवित्र करने वाले अग्नि स्वरूप प्रभु के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे भगवन् ! आप हमारे जीवनों को पवित्र करते तथा बढ़ाते हो। हमें बल और अन्न प्रदान करो और दुष्टों को दूर करो।

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम।।2।।**

ऋ. 9/66/20

मन्त्रार्थ :– हे (भूः) प्राणों के प्राण (भुवः) दुःखविनाशक (स्वः) सुख प्रदाता (अग्ने) अग्नि स्वरूप परमात्मन् ! (ऋषिः) ज्ञान देने वाले (पवमानः) पवित्र करने वाले व (पाञ्चजन्यः) पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को शुभमार्ग पर चलाने वाले (पुरोहितः) सबका हितकारी, सबका अगुआ परमात्मा ही है। (तम्) उस (महागयम्) स्तुति योग्य परमेश्वर को हम (ईमहे) प्राप्त होवें। (स्वाहा) यह आहुति इस पवित्र भावना से देता हूं। (इदम्) यह आहुति (पवमानाय–अग्ने) पवित्र करने वाले अग्नि स्वरूप प्रभु के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे सर्व प्रकाशक प्रभो ! आप सब वर्णस्थ तथा अन्य अनार्य लोगों

का भी पालन करने वाले हो, सब धार्मिक कार्यों में प्रमुख होकर सहायता करने वाले, अत्यन्त बलवान् हो। हम सब धर्म–कर्म की सफलता के लिए प्रभु का स्मरण करते हैं।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा।।
इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम।।3।। ऋ. 9/66/21

मन्त्रार्थ :– हे (भूः) प्राणों के प्राण (भुवः) दुःखविनाशक (स्वः) सुखप्रदाता (अग्ने) अग्नि स्वरूप परमात्मन् ! आप (स्वपा) उत्तम कर्मों के करने वालों को, (पवस्व) पवित्र करो और (अस्मै) हमारे लिए (वर्चः) तेज को, (सुवीर्यम्) पराक्रम को, (रयिम्) विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य को, (पोषम्) शरीर की पुष्टि को (मयिम्) मुझको (दधत्) प्राप्त कराओ, (स्वाहा) यह आहुति इस पवित्र भावना से देता हूं, (इदम्) यह आहुति (पवमानाय–अग्ने) पवित्र करने वाले अग्नि स्वरूप प्रभु के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे प्रभु ! आप अच्छे कर्मों के अधिष्ठाता हैं। आप हमें तेज, पूर्ण ऐश्वर्य और पुष्टि धारण कराते हुए पवित्र करें।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा।।
इदं प्रजापतये इदन्न मम।।4।। ऋ. 10।121।10।।

मन्त्रार्थ :– हे (भूः) प्राणों के प्राण (भवः) दुःखविनाशक (स्वः) सुखप्रदाता भगवन् ! आप (प्रजापते) सब प्रजाओं के स्वामिन् ! (त्वत्+अन्यः) तुझ से अन्य (ता+विश्वा+एतानि) इन सब (जातानि) उत्पन्न पदार्थों का (न+परि+बभूव) वशकारी नहीं है (यत्कामा) जिस कामना वाले होकर (ते) तुझे (जुहुमः) हम पुकारें (नः) हमारी (तत्) वह कामना (अस्तु) सिद्ध {पूर्ण} होवे। (वयम्) हम (रयीणाम्) उत्तम् धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें।

भावार्थ :– हे प्रजाओं के स्वामी आपके अतिरिक्त इस सारी सृष्टि का स्वामी कोई नहीं है। हम जो–जो कामना करते हुए आपके लिए यज्ञ करते हैं, वह सब कुछ हमें आप से प्राप्त हो। हम सब उत्तम–उत्तम धनों के स्वामी बनें।

जो शाश्वत है सत् असत् रूपों का अव्यक्त कारण है, जिस पुरुष के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि सृजित है वह ससार में ब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है।

सर्वमंगल कार्यों में देने योग्य आहुतियाँ

अष्टाज्याहुति मन्त्र

(घृत तथा सामग्री से अगली आठ आहुतियाँ)

ओ३म् त्वं नों अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवं यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुंचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा।।
इदमग्नीं वरुणाभ्याम् इदन्न मम।।1।।

ऋ॰ 4।1।4।।

मन्त्रार्थ :– हे (अग्ने) अग्नि स्वरूप परमात्मन् ! आप हमारे सब कर्मों को जानने वाले हो (त्वम्) आप (देवस्य) विद्या के प्रकाश करने वाले और (वरुणस्य) श्रेष्ठ ग्रहण करने योग्य (विद्वान्) विद्यायुक्त विद्वान् के (हेडः) अनादर से (नः) हमको (अवयासिसीष्ठाः) पृथक रखें अर्थात् हे प्रभो ! आप ऐसी कृपा करें जिससे हम आपकी आज्ञानुकूल चलें। आप (याजिष्ठः) सर्वश्रेष्ठ यज्ञकर्ता और (वह्नितमः) हविरादि उपयोगी पदार्थों को प्राप्त कराने वाले हो (शोशुचानः) अत्यन्त तेज वाले हो अतः आप (अस्मत) हमसे (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष के कारण, पापों को (प्रमुमुग्ध्य) नष्ट कर दीजिए {अच्छी प्रकार हटाओ} (स्वाहा) इसी भावना से यह आहुति देता हूं। (इदम्) यह आहुति (अग्नि वरुणाभ्याम्) श्रेष्ठ अग्नि स्वरूप परमात्मा के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– वे ही विद्वान्जन हैं कि जो श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष का अनादर नहीं करते हैं और वे ही अध्यापक और उपदेशक कल्याणकारी होते हैं जो हम लोगों के दोषों को दूर करके पवित्र करते हैं, वे ही हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं। (महर्षि वेद भाष्य से उद्धृत)

ओ३म् स त्वं नों अग्नेऽवमो भंवोती नेदिंष्टो अस्या उषसो व्युंष्टौ अवं यक्ष्व नो वरुंणं रराणो वीहि मृंडीकं सुहवों न एधि स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदन्न मम।।2।।

ऋ॰ 4।1।5।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो! (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष (सः) वह (त्वम्) आप (अस्या) इस (उषसः) प्रभात काल के (व्युष्टौ) अग्निहोत्र आदि कामों में (नेदिष्ट) समीपस्थ हो जाओ (ऊती) रक्षण आदि कर्म से (नः)

हमारी (अवमः) रक्षा करने वाले (भव) होइये। हे प्रभो! आप (वरुणम्) वरणीय श्रेष्ठ विद्वानों को (रराणः) देते हुए (नः) हमारी (अव–यक्ष्व) संगत कराओ और (मृडीकम्) सुखदायक इस हवि शेष भाग को (वीहि) स्वीकार कीजिए और (नः) हमारे (सुहवः) सुगमता से पुकारने योग्य (एधि) हो जाओ। (स्वाहा) इस पवित्र भावना से यह आहुति देता हूं। (इदम्) यह आहुति (वरुणाभ्याम्) श्रेष्ठ एवं (अग्नि) अग्निस्वरूप परमात्मा के लिये है (इदम्) यह (मम) मेरे लिये (न) नहीं है।

भावार्थ :– वही अध्यापक व राजा श्रेष्ठ है कि जो उत्तम शिक्षा से हम लोगों की प्रातःकाल के सदृश रखा करे। दुष्ट आचरण से अलग करके श्रेष्ठ आचरण करावें। (महर्षि वेदभाष्य से उदधृत)

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके स्वाहा।। इदं वरुणाय इदन्न मम।।3।।

ऋ॰ 1।25।19।।

मन्त्रार्थ :– हे (वरुण) वरणीय भगवन् ! (मे) मेरी (इम) इस (हवं) प्रार्थना, पुकार को (श्रुधीं) सुन लो (अद्य च) और आज इस यज्ञ के पवित्र समय पर मुझे (मृडय) सुखी कर दो, मैं (त्वां) आपकी (अवस्युः) शरण में आया हुआ, आपसे रक्षा चाहता हुआ, (आचके) मैं आपको पुकार कर (स्वाहा) इस पवित्र भावना से यह आहुति समर्पित कर रहा हूँ। (इदम्) यह आहुति (वरुणाय) श्रेष्ठ वरणीय परमात्मा के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– जैसे ईश्वर निश्चय ही उपासक लोगों के द्वारा सच्चे प्रेम से की हुई स्तुति को अपनी सर्वज्ञता से यथावत् सुनकर उसके अनुसार स्तावक जनों को सुख प्रदान करता है, वैसे विद्वान् लोग भी होवें।

(ऋग्वेद भाष्य–भास्कर से उदधृत)

ओ३म् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा।।
इदं वरुणाय इदन्न मम।।4।।

ऋ॰ 1।24।11

अध्ययन अध्यापन, यज्ञ करना तथा कराना दान लेना तथा दान देना यह बुद्धिजीवियों, विद्वानों अर्थात् ब्राह्मणों के निर्धारित काम हैं।

मन्त्रार्थ :– हे (वरुण) वरणीय भगवन् ! (ब्रह्मणा) सत्यवाणी वेद से (वन्दमानः) वन्दना करता हुआ मैं (तत्) उसी पूर्ण आयु की (त्वा) आपसे (यामी) याचना करता हूँ। (तत्) जिस आयु की (हविर्भिः) शाकल्य आदि से (यज्ञमानः) यज्ञ करने वाले (आशास्ते) श्रेष्ठजन आशा करते हैं (इह) इस यज्ञ आदि कर्म में (अहेडमानः) मेरा अनादर न करते हुए, हे (उरूशंसः) प्रशंसनीय प्रभो ! आप मेरी (बोधि) प्रार्थना को सुनें और (नः) हमारा (आयुः) जीवन असमय में (प्रमोषी) नष्ट अर्थात् अकाल मृत्यु (मा) न हो जिससे मैं पूर्ण आयु को प्राप्त करके शुभ कर्मों के आचरण से ऊँचा उठूँ। (स्वाहा) इसी भावना से यह आहुति समर्पित करता हूं, (इदम्) यह आहुति (वरुणाय) श्रेष्ठ वरणीय (अग्नि) अग्नि स्वरूप परमात्मा को समर्पित है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे जगत्प्रभो ! हवि आदि दे कर जिस आयु की यजमान लोग आपका सत्कार करते हुए आशा करते हैं, उस ही प्रसिद्ध सौ वर्ष की आयु को मैं भी तुझ से माँगता हूँ। हे प्रभो ! हमारी आयु में न्यूनता न हो।

ओ३म् ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा।।
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः
स्वर्केभ्यःइदन्न मम।।5।।

पारस्कर गृह्यसूत्र 1/2/80, कात्या० श्रौत सूत्र 25।1।11।।

मन्त्रार्थ :– हे (वरुण) वरणीय भगवन् ! (ये) जो (ते) आपकी सृष्टि में (शतम्) सैकड़ो और (ये सहस्त्र) जो हजारों (यज्ञियाः) यज्ञ के करने में (महान्तः) बड़े–बड़े (पाशाः) बन्धन या रुकावटें (वितताः) फैली हुई है (तेभिः) उनसे (नः) हमें (अद्य) आज ही (सविता) सृष्टि के उत्पत्तिकर्ता (उत) तथा (विष्णुः) सर्वव्यापक परमेश्वर और (विश्वे) सब (स्वर्काः) तेजस्वी लोग (मरुतः) विद्वान जन, आप लोग (मुञ्चन्तु) मुक्त करावें। (स्वाहा) इसी भावना से यह आहुति समर्पित करता हूं। (इदम्) यह आहुति आप वरुण, सविता, विष्णु नाम से प्रसिद्ध परमेश्वर, और तेजस्वी विद्वज्जनों के लिये है. (इदम्) यह (मम) मेरे लिये (न) नहीं है।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।। 1.89

भावार्थ :– हे वरुण ! यज्ञ के मार्ग में जो सैकड़ों हजारों विघ्न हैं, आप हमें उनसे दूर रखिये।

**ओ३म् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो घेहि भेषज थं स्वाहा।। इदमग्नये
अयसे इदन्न मम।।6।।**

पार.गृ. 1/2/80–कात्या. श्रौत सूत्र 15/1/11

मन्त्रार्थ :– हे (अग्ने) अग्नि स्वरूप भगवन् ! आप (अयाः) सर्वव्यापक (असि) हो (च) और (अनभिशस्तिपाः) निन्दित कार्यों से हमारी रक्षा करते हो इससे (सत्यम् इत्) यह निश्चित सत्य ही है कि (त्वम्) आप (अयाः) सर्वत्र व्यापक (असि) हो, (अयाः) सर्व व्यापक प्रभो ! (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञादि शुभ कार्यों को आप (वहासि) वहन करते हो =पूर्ण करते हो, अतः (अयाः) सर्वत्र व्यापक भगवन् ! आप (नः) हमको निन्दित कर्मों को दूर करने की (भेषजम्) शक्ति (धहि) प्रदान करो। (स्वाहा) इसी पवित्र भावना से यह आहुति समर्पित करता हूं। (इदम्) यह आहुति (अयसे) आप सर्वत्र व्यापक (अग्नये) अग्नि स्वरूप परमेश्वर के लिये है, (इदम्) यह आहुति (मम) मेरे लिये (न) नहीं है।

भावार्थ :– हे भगवन्! हमारे मनसा, वाचा, कर्मणा होने वाले समस्त व्यवहारों को यथावत जानते हो। हमारे जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों अल्पज्ञता एवं अल्पदेशी होने के कारण हम निन्दित कर्मों में पड़ न जायें, इसके लिए आप हमको सतत् सजग करते हो, हमारी रक्षा करने वाले हो। हे प्रभो! हमें ऐसी शक्ति–सामर्थ्य प्रदान करो कि जिससे हम घृणित कार्यों से सदैव बचे रहें।

**ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ।।
इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च इदन्न मम।।7।।**

ऋ. 1/24/15

मन्त्रार्थ :– हे (वरुण) वरुणीय भगवन् ! आप (अस्मत्) हमारे (अध्यम्) नीच, मिथ्या भाषादि से (मध्यम्) मध्यम प्रकार के राग–द्वेषादि (उत्) और (उत्तमम्) अत्यन्त दुःख देने वाले (पाशम्) {रुकावटें} = बन्धनों को (उत् विश्रथाय) अच्छी प्रकार नष्ट कीजिए (अथ) और हे (आदित्य) अविनाशी प्रभो ! (तव) जगत् उपदेशक गुरु आपके (व्रत) नियम में अर्थात् सत्याचरणरूपी व्रत को करके (अनागसः) अपराध रहित हो कर (वयम्) हम (अदित्ये) मोक्ष प्राप्ति के लिये (स्याम) जीवन भर प्रयत्नशील रहें। (स्वाहा) इसी पवित्र भावना से यह आहुति समर्पित करता हूं। (इदम्) यह आहुति (वरुणाय) वरणीय (आदित्याय) अखण्ड और (अदित्ये) आनन्ददाता प्रभु के लिए है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए नहीं है।

भावार्थ :– जो ईश्वर की आज्ञा की यथावत् नित्य पालना करते हैं, वे ही पवित्र और सब दुःख बन्धनों से अलग हो कर सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं।

ओ३म् भवंतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ।
मा यज्ञ थं हिं थं सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य
नः स्वाहा।। इदं जातवेदोभ्यां इदन्न मम।।8।।

यजु॰ 5।3।।

मन्त्रार्थ :– हे यज्ञ रूप प्रभो ! (नः) हम लोगो के बीच में (वरेपसौ) अपराध से रहित (समनसौ) समान मन वाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक (सचेतसौ) समान रूप से जानने–जनाने वाले स्त्री पुरुष (जातवेदसौ) सब पदार्थों में विद्यमान् भौतिक अग्नि की विद्या को सिद्ध करने वाले, जो पढ़ने–पढ़ाने वाले विद्वान, उपदेशक (भवतम्) हैं और वे दोनों (यज्ञम्) यज्ञ कर्म को (यज्ञपतिम्) इस यज्ञ के करने वाले को (मा हिंसिष्टम्) हनन, कष्ट ना होने देवें। (अद्य) आज यज्ञ के दिन ऐसे ही स्त्री पुरुष व वैदिक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शिवौ) कल्याणकारी (भवतम्) होवें। (स्वाहा) इस पवित्र भावना से यह आहुति देता हूं। (इदम्) यह आहुति (जातवेदोभ्याम्) ज्ञान के

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।

वणिक्यथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।। 1.90

भंडार परमात्मा के निमित्त है, (इदम्) यह (मम) मेरे लिए (न) नहीं है।
भावार्थ :– मनुष्य विद्या के प्रचार के लिये अध्ययन–अध्यापन तथा शुभ कर्मों के आचरण का कभी परित्याग न करें, क्यों कि यह सबसे उत्कृष्ट हैं। (दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर)

।। इति बृहद् यज्ञविधि ।।

पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, व्यापार, ब्याज पर धन देना और खेती वैश्य कर्म हैं।

प्रातःकालीन मन्त्र

पृष्ठ 132, 133 का अवलोकन करें (आघारावाज्याहुति, आज्यभागाहुति के चार मन्त्रों की आहुतियां देने के पश्चात् घृत तथा सामग्री से अगली चार आहुतियां)

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।।1।।

यजु॰ 3।9।।

मन्त्रार्थ :– जो (सूर्यः) चराचर की आत्मा, (ज्योतिः) ज्योतियों=प्रकाशकों का भी (ज्योतिः) प्रकाशक, वह (सूर्यः) सबका प्राणरूप परमेश्वर है। (स्वाहाः) उसकी आज्ञा पालन के लिए हम होम करते हैं।

भावार्थ :– तेजरूप प्रभु की ज्योति से यह सूर्य अपनी ज्योति प्रदान कर रहा है।

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।।2।।

यजु॰ 3।9।।

मन्त्रार्थ :– (सूर्यः) सर्वोत्पादक ईश्वर (वर्चः) [पुंजमय] तेजमय है, यह (ज्योतिः) सब ज्योति जो संसार में दिखाई देती है वह (वर्चः) उसी परमेश्वर की ही [पुंज] तेज है। (स्वाहा) उसकी आज्ञा पालन के लिए हम होम करते हैं।

भावार्थ :– ज्योतिस्वरूप प्रभु का तेज हमें, तेज प्रदान करे।

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।।3।।

यजु॰ 3।9।।

मन्त्रार्थ :– जिसकी (ज्यातिः) ज्योति से (सूर्यः) सारा जगत् जगमगा रहा है, जो (सूर्योज्योतिः) सकल विद्या का प्रकाश करने वाला सबका उपास्य देव है, उसकी (स्वाहा) प्रसन्नता के लिए हम होम करते हैं।

भावार्थ :– हमारे नेत्रों की ज्योति प्रभु आप हैं और आप ही से सारा संसार प्रकाश पा रहा है। हम भी उस ज्योति की प्राप्ति के लिए यह आहुति दे रहे हैं।

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा।।4।।

यजु॰ 3।10।।

मन्त्रार्थ :– जो (देवेन) सर्वप्रकाशक (सवित्रा) जगत् को उत्पन्न कर धारण करने वाला (सजूः) अन्तर्यामी प्रभु वही (सूर्यः) सबकी आत्मा अपनी कृपा दृष्टि से (उषसा) प्रातःकाल (सजूः) में वह (इन्द्रवत्या) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए, यज्ञ की इस (जुषाणः) आहुति को ग्रहण कर सब ओर (वेतु) फैला देवें (स्वाहा) उसकी आज्ञापालन एवं जगत् के कल्याण के लिए हम होम करते हैं।

भावार्थ :– उषा से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सूर्य इस आहुति को ग्रहण कर सर्वत्र फैला देवें।

सायंकालीन मन्त्र

पृष्ठ 132, 133 का अवलोकन करें (आघारावाज्याहुति, आज्यभागाहुति के चार मन्त्रों की आहुतियां देने के पश्चात् घृत तथा सामग्री से अगली चार आहुतियां)

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।।1।।

यजु॰ 3।9।।

मन्त्रार्थ :– जो (अग्निः) अग्निस्वरूप और (ज्योतिर्ज्योतिः) ज्योतियों का भी ज्योति (अग्निः) परमेश्वर है (स्वाहा) उसकी आज्ञापालन करने तथा सर्वजगत् के कल्याण हेतु हम होम करते हैं।

भावार्थ :– अग्निरूप, ज्योतिःस्वरूप प्रभु के लिए यह आहुति है।

ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।।2।।

यजु॰ 3।9।।

मन्त्रार्थ :– (अग्निः) अग्नि में जो (वर्चः) [पुंज] वर्च, पुंज अर्थात् तेज है, वह (ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप परमात्मा की ही पुंज अर्थात् तेज है। (स्वाहा) उसकी आज्ञा पालन एवं जगत् के उपकार के लिए हम होम करते हैं।

ब्राह्मणों में विद्वान, विद्वानों में क्रियाशील, क्रियाशीलों में कार्यकर्ता, कार्यकर्ताओं में ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हैं।

भावार्थ :– अग्निरूप तेजस्वी ईश्वर के लिए यह आहुति है।

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।।3।। यजु. 3/9

(तृतीय मन्त्र का अर्थ प्रथम मन्त्र के समान है।)

(इस मन्त्र का मन में उच्चारण कर आहुति देवें।)

(तीसरी आहुति मौन क्यों ? – परमेश्वर को भी अग्नि कहा गया है और यह वाणी का विषय नहीं है, किन्तु मनन का विषय है। मनन मौन होकर किया जाता है। जब मनन आरम्भ होता है तब वाक् अपना व्यापार बन्द कर देती है। सूर्य और भौमाग्नि की चर्चा तो वाणी करती है किन्तु परमाग्निपरमेश्वर उसका अपना विषय नहीं बनता।)

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या।
जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा।।4।।

यजु. 3।10।।

मन्त्रार्थ :– जो (देवेन) सर्वप्रकाशक (सवित्रा) जगत् को उत्पन्न कर धारण करने वाला परमेश्वर (सजूः) सर्व व्यापक है (सजूरात्र्येन्द्रवत्या) और जो वायु व चन्द्र वाली रात्रि के साथ परिपूर्ण है, वह (अग्निः) अग्नि परमेश्वर यज्ञ की इस (जुषाणः) आहुति को ग्रहण कर सब ओर (वेतु) फैला देवें। (स्वाहा) उस परमेश्वर की आज्ञापालन के लिए और जगत् के कल्याण के लिए हम होम करते हैं।

भावार्थ :– ऐश्वर्ययुक्त रात्रि के समय यह अग्नि आहुति को सर्वत्र फैला देवें।

ऋषि दयानन्द भाषार्थ :– (सजूर्देवेन) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सबके अंग–अंग में व्याप्त है, वह अग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो, जिसके लिए हम होम करते हैं।

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।। 1.108

दोनों समय की आहुति

(घृत तथा सामग्री से अगली चार आहुतियाँ)

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।
इदमग्नये प्राणाय –इदन्न मम।।5।।

मन्त्रार्थ :– (भूः) प्राणाधार प्रभु की आज्ञा पालन के लिए (अग्नये) प्रकाशरूप दहनकर्मा भौतिक अग्नि के लिए और (प्राणाय) जीवनाधार प्राण वायु की शुद्धि के लिए यह (स्वाहा) आहुति समर्पित की जाती है। (इदम) यह दी हुई आहुति (अग्नये) अग्नि और (प्राणाय) प्राण की भी है (इदम्) यह (मम) मेरे अकेले के लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– प्राणवायु की शुद्धि के लिए मैं यह आहुति अग्नि को अर्पण करता हूँ जो केवल मेरे लिए नहीं, समस्त संसार की प्राणशक्ति के लिए है।

ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।
इदं वायवेऽपानाय–इदन्न मम।।6।।

मन्त्रार्थ :– (भुवः) दुःखविनाशक परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिए (वायवे) शरीरधारियों के जीवनाधार सूत्रात्मा वायु के लिए और (अपानाय) शरीरस्थ अपान शुद्धि के लिए (स्वाहा) यह आहुति समर्पित की जाती है। (इदम्) यह (वायवे) आहुति सूत्रात्मा वायु और (अपानाय) अपान के लिए है (इदम्) यह आहुति (मम) केवल मेरे लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– प्राणवायु और शरीरस्थ अपान वायु की शुद्धि के लिए मैं यह आहुति अग्नि को अर्पण करता हूँ।

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदमादित्याय व्यानाय–इदन्न मम।।7।।

मन्त्रार्थ :– (स्वः) आनन्ददायक भगवान् की आज्ञापालन के लिए (आदित्याय) ज्योतिस्वरूप सबके नेत्र उस सूर्य के लिए (व्यानाय) शरीरस्थ व्यान संज्ञक वायु की निर्मलता के लिए है, यह (स्वाहा) आहुति समर्पित की जाती है।

(इदम्) यह आहुति (मम) मेरे लिए (न) नहीं है। (इदम्) यह आहुति सूर्य और व्यान संज्ञक वायु के लिए है।

भावार्थ :– सूर्य की ज्योति और शरीरस्थ व्यान वायु की निर्मलता के लिए मैं यह आहुति अग्नि को अर्पण करता हूँ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम।।8।।

आधारित तै.उ. शिक्षा. तै.आ. 10/2–पार. 1/3/4

मन्त्रार्थ :– (भूः) प्राणाधार (भुवः) दुःखविनाशक (स्वः) आनन्ददायक परमपिता की आज्ञा पालने के लिए तथा (अग्निवाय्वादित्येभ्यः) अग्नि, वायु तथा सूर्य इन तीनों की पवित्रता के लिए और (प्राणापानव्यानेभ्यः) प्राण, अपान और व्यानादि प्राणों की मलीनता हटाने के लिए यह (स्वाहा) यज्ञ करते हैं। (इदम्) यह हुत सभी के लिए है, (इदम्) यह (मम) मुझ अकेले के लिए (न) नहीं है।

भावार्थ :– अग्नि, वायु तथा सूर्य की किरणों की पवित्रता के लिए तथा प्राण, अपान, व्यान की शुद्धि के लिए सुहुत हो।

(घृत तथा सामग्री दोनों से ये अगली चार आहुतियाँ दें।)

ओ३म् आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा।।9।।

तैति. आ. 10।15।।

मन्त्रार्थ :– (आपः) 'आपः' जो प्राण, परमेश्वर के (ज्योतिः) प्रकाश को प्राप्त होके (रसः) अर्थात् नित्यानन्द (अमृतम्) मोक्षस्वरूप है (ब्रह्म) उस ब्रह्म को प्राप्त होकर (भूर्भुवः स्वः) तीनों लोकों में (ओम् स्वाहा) आनन्द से विचरते हैं।

भावार्थ :– सर्वत्र व्यापक, ज्योतिस्वरूप, रसरूप जो अमर और सबसे बड़ा है, प्राणों का प्राण है, जगदुत्पादक है, सुखरूप है उस ईश्वर के लिए सुहुत हो।

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।10।।

यजु॰32।14।।

मन्त्रार्थ :– हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आपकी कृपा से (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि की (उपासते) उपासना (देवगणाः) विद्वान्, ज्ञानी (च) और (पितरः) योगी लोग करते हैं, (तया) उसी (मेधया) बुद्धि के द्वारा (माम्) मुझको (अद्य) इसी वर्तमान समय में (मेधाविनम) बुद्धिमान् आप (कुरु) कीजिये।

मन्त्रार्थ :– (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि का (देवगणाः) विद्वान् जन (च) और (पितरः) रक्षक लोग (उपासते) आसरा लेते हैं (तया) उस (मेधया) बुद्धि से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (माम्) मुझको (अद्य) आज त् (स्वाहा) सत्य वाणी से (मेधाविनम्) बुद्धिमान् (कुरु) बना।

भावार्थ :– जिस धारणा और ग्रहण करने की शक्ति वाली बुद्धि को देवता अर्थात् विद्वान् लोग तथा पितर लोग धारण करते हैं उसी सात्त्विक मेधा बुद्धि से हे प्रभो ! आप मुझे बुद्धिमान् बनाइये।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्न आसुव स्वाहा।।11।

(मन्त्रार्थ पृष्ठ 79 पर), यजु॰ 30।3।।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा।।12।।

(मन्त्रार्थ पृष्ठ 83 पर), यजु॰ 40।16।।

इन आहुतियों के पश्चात् विशिष्ट आयोजन अथवा पर्व आदि से सम्बद्ध मन्त्रों की आहुतियां देवें।

यदि यज्ञ में अधिक संख्या में आहुति देने का विचार हो तो "विश्वानि देव मन्त्र और गायत्री मन्त्र" बोलकर आहुति दे सकते हैं।

सम्पूर्ण वेद ज्ञानविज्ञान धर्म का मूल है। वेदज्ञों का स्मृति ज्ञान, सज्जनों का व्यवहार तथा अपने को सन्तुष्टि दे वे कार्य भी धर्म हैं।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

तीन बार यह मन्त्र बोल कर आहुति दे दें।

पूर्णाहुति मन्त्र

ओ३म् सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा।।

मन्त्रार्थ :– हे (ओ३म्) सर्वरक्षक प्रभो ! आपकी पूर्ण कृपा से (सर्वं) सब यज्ञकर्म (वै) निश्चयपूर्वक (पूर्णं) पूर्ण हो गया है (स्वाहा) यह सत्य है।

इति दैनिक अग्निहोत्र विधि

कुछ आर्य समाजों में पूर्ण आहुति के पश्चात् यजमान धार बाँध कर शेष घृत को यह मंत्र बोल कर अग्नि को समर्पित कर यज्ञ सम्पन्न करते हैं। जबकि संस्कार विधि में इसका उल्लेख नहीं है।

यज्ञ का महत्व

(इस मन्त्र में यज्ञ की महिमा का सुन्दर वर्णन है।)

ओ३म् वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।

यजु॰ 1।3।।

मन्त्रार्थ :– जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार का धारक और (पवित्रम्) शुद्ध करने वाला श्रेष्ठ कर्म (असि) है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्रधारम्) अनेक प्रकार के ब्रह्मांड को धारण करने और (पवित्रम्) सुखदायक एवं पवित्र (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (सविता) वसु आदि तैंतीस देवों का उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करें। हे जगदीश्वर! आप हम लोगों से सेवित जो, (वसोः) यज्ञ है उस, (पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त विज्ञान, (शतधारेण) बहुत विद्याओं को

धारण करने वाले वेद और (सुप्वा) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिए। यह पवित्र यज्ञ सबको करना चाहिए क्योंकि यह (कामधुक्षः) सब कामनाओं को देने वाला है।

अंगपुष्टि प्रार्थना

सामान्य यज्ञ में घृत पात्र, पारायण यज्ञों के इदन्नमम पात्र में जल डालकर दोनों हाथों की अंगुलियाँ भिगोयें और यज्ञाग्नि में हाथ तपाते हुए यह मन्त्र बोलें :

ओ३म् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
ओ३म् आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि।
ओ३म् वर्च्चोदा अग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि।
ओ३म् अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽ आपृण।।

मन्त्रार्थ :– हे प्राणियों के शरीर रक्षक भगवन् ! मेरे शरीर की रक्षा कीजिए। हे जीवनदाता प्रभो ! मुझे पूर्ण आयु प्रदान कीजिए। हे सर्वविद्यामय प्रभो ! मुझे सद्ज्ञान दीजिए। हे सब कामों को पूर्ण करने हारे प्रभो ! मेरे तन की सभी कमियों को पूर्ण कीजिए।

ओ३म् तेजोऽसि तेजोमयि धेहि।
ओ३म् वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
ओ३म् बलमसि बलं मयि धेहि।
ओ३म् ओजोऽसि ओजोमयि धेहि।
ओ३म् मन्युरसि मन्यु मयि धेहि।
ओ३म् सहोऽसि सहो मयि धेहि।।

मन्त्रार्थ :– हे प्रभो ! जो तेरे में तेज, पराक्रम, बल, सामर्थ्य, दुष्टों के प्रति क्रोध तथा सहनशीलता का भण्डार है, उसमें से मुझे थोड़ा सा तेज, पराक्रम, बल सामर्थ्य, क्रोध और सहनशीलता का आधान करो।

वेद, स्मृति, सद्व्यवहार तथा अपनी आत्मा को प्रिय कार्य ये धर्म के चार लक्षण कहे गए हैं।

वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः
शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्
दोग्ध्रीः धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे–निकामे नः
पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

यजु. 22/22

ब्रह्मन् ! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल विनाशकारी ।।
होवें दुधारु गौएँ, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ।।
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षे पर्जन्य ताप धोवे ।।
फल–फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी ।
हो योग–क्षेमकारी स्वाधीनता हमारी ।।

यज्ञ–प्रार्थना (सब मिलकर)

यज्ञरूप प्रभो ! हमारे भाव उज्जवल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिये।।
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें।।
अवश्मेधादिक रचाएं यज्ञ पर–उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को।।
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।

पूजितं ह्यसनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भक्तमुभयं नाशयंदितम्।। 2.55

रोग–पीड़ित विश्व के संताप सब हरते रहें।।
कामना मिट जाय मन से पाप अत्याचार की।
भावनाऐं पूर्ण होवें यज्ञ से नर–नार की।।
लाभकारी हो हवन हर प्राणधारी के लिये।
वायु–जल सर्वत्र हो शुभ गन्ध को धारण किये।।
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम–पथ विस्तार हो।।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो।।
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणारूप ! करुणा आपकी सब पर रहे।।

ईश–स्तुति (सब मिलकर)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव–देव ।।

सर्व–मंगल–कामना (सब मिलकर)

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।
सब का भला करो भगवान्।
सब पर दया करो भगवान्।
सब पर कृपा करो भगवान्।
सब का सब विधि हो कल्याण।।
(समस्त यज्ञों, संस्कारों, उत्सवों व कार्यक्रमों के अन्त में)

सम्मानित पूजित भोजन बल तथा ऊर्जा प्रदान करता है।

अपूजित अर्थात् निन्दित भोजन इन दोनों को नष्ट कर देता है।

शान्ति–पाठ

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष थं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं थं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

ओ३म् शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

अर्थ–हे सोमरूप आनन्दघन प्रभो ! आपकी कृपा से हमारे लिये (प्रकाशमान सूर्य–चन्द्र–तारे), आकाश, पृथ्वी, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, समस्त विद्वान्, वेद–ज्ञान सब कुछ सच्ची शान्ति देने वाले (सुखकारी) हों, हमारी शान्ति निरन्तर बढ़ती रहे।

हे सर्वरक्षक प्रभो ! हमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक– तीनों तापों से शान्ति हो। हमारे मन, वचन और कर्म– तीनों शान्तिदायक हों।

नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद व्रजेत्।। 2.56

अथ पितृयज्ञः

माता–पिता, पुरोहितजन और जितने भी महापुरुष होते हैं, उनका पूजन करना अर्थात् यथोचित् उनकी इच्छाओं की पूर्ति करना, उनक़ी पूजा कहलाती है। जब उनकी सेवा की जाती है, उनका युक्त आदर किया जाता है, वह हमारे यहाँ 'पितृ–यज्ञ' कहलाते हैं।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

निरुक्त में कहा है – **"पिता माता वा पालयिता वा"** पालक, पोषक व रक्षक को पिता माता कहते हैं, वही पितर हैं।

अग्निहोत्र विधि पूर्ण करके तीसरा पितृ–यज्ञ करें, अर्थात् जीते हुए माता–पिता आदि की यथावत् सेवा करना **'पितृ–यज्ञ'** कहलाता है।

(संस्कार विधि गृहा.)

फिर निरुक्त में कहा है, **"पान्ति पालयन्ति रक्षन्ति, अन्न–विद्या–सुशिक्षादि–दानैः ते पितरः"** अर्थात् जो अन्न–भोजन, वस्त्र, सुशिक्षा आदि देकर, पालन–पोषण–रक्षण करते हैं, वे सब पितर कहलाते हैं।

'पितृ–यज्ञ' के दो भेद हैं – एक **'तर्पण'** दूसरा **'श्राद्ध'**। 'तर्पण' उसे कहते हैं, जिस कर्म से विद्वान्रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं सो तर्पण कहलाता है। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धापूर्वक सेवा करना है, सो 'श्राद्ध' कहलाता है।

यह 'तर्पण' आदि का कर्म विद्यमान् अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है, मृतकों में नहीं। क्योंकि उसकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना असम्भव है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती। किन्तु जो उनका नाम लेकर देवें वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता, इसलिए मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वथा असम्भव है। इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से 'तर्पण' और 'श्राद्ध' वेदों में कहा है। क्योंकि सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इन दोनों ही के प्रत्यक्ष होने से यह सब काम हो सकता है। इससे केवल विद्यमानों को ही श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम तर्पण है।

।। इति पितृयज्ञः ।।

किसी को जूठा भोजन न दें। दो भोजनों के मध्य न खावे

अति भोजन न करे और न जूठे मुँह कहीं जावे।

बलिवैश्वदेवयज्ञ

बलिवैश्व वह है जो प्राणी के लिए जीवन में सुगन्धि देते हैं। प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं। उन पक्षियों के लिए, जो वाणी, वाक्य उच्चारण नहीं कर सकते। वाक्य उच्चारण तो कर लेते हैं परन्तु वह विद्या परिश्रम से ही जानी जाती है। आज उन प्राणियों को देना, हमारा बलिवैश्वदेवयज्ञ है। अग्नि को देना, अग्नि उन्हें प्रदान कर देती है। अग्नि उसका हव्य बन करके, उनको प्राप्त करा देती है, उसको बलिवैश्वदेवयज्ञ कहते हैं।

(ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

[बलि+वैश्वदेव+यज्ञ इन पदों का समुदाय है। बलि शब्द का अर्थ–भोजन में से अलग किया गया भाग। वैश्वदेव शब्द का अर्थ है–अनेक प्राणियों के लिए अर्थात् जिस यज्ञ में, भोजन में से कुछ भाग प्राणियों के लिए निकाला जाए, वह बलिवैश्वदेव यज्ञ है।]

निम्नलिखित दस मन्त्रों से घृत–मिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़कर पाकशाला में जो कुछ भोजन बना है, उसकी चूल्हे अथवा भट्टी की धधकती हुई आग में निम्न आहुतियाँ समर्पित करें :–

1. **ओ३म् अग्नये स्वाहा** – ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

2. **ओ३म् सोमाय स्वाहा** – उत्पन्न और पुष्टि करने वाले प्रभु के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

3. **ओ३म् अग्निषोमाभ्यां स्वाहा** – प्राणियों के जीवन से दुःखों का नाश करने वाले प्रभु के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

4. **ओ३म् विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा** – संसार को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर तथा विद्वान् लोगों के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

5. **ओ३म् धन्वन्तरये स्वाहा** – जन्म मरण आदि रोगों के नाश करने वाले प्रभु के लिये यह सुन्दर आहुति है।

6. **ओ३म् कुह्वै स्वाहा** – सब के भीतर बसी हुई शक्ति प्रभु के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

7. **अनुमत्यै स्वाहा** – सम्पूर्ण परिमेय तथा आकारवान् पदार्थों के आधार प्रभु के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

8. ओ३म् प्रजापतये स्वाहा – जगत् के स्वामी प्रजापति जगदीश्वर के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

9. ओ३म् सह द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा – द्युलोक और पृथिवीलोक के उत्पादक ईश्वर के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

10. ओ३म् स्विष्टकृते स्वाहा – सब के इष्ट सुख देने वाले परमात्मा के लिये, यह सुन्दर आहुति है।

इसके पश्चात् थाली या पत्तलों में पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथा क्रम निम्न मन्त्रों से 'नमः' बोल कर मिष्ट युक्त अन्न, अथवा रोटी के सौलह भाग कर रखें।

अन्न बलिदान के मन्त्र

[वलि भाग निर्देशित दिशा में रखें]

ओ३म् सानुगायेन्द्राय नमः।।1।। (पूर्व की ओर)

सर्वेश्वयर्ययुक्त प्रभु के लिये यह बलि भाग है

ओ३म् सानुगाय यमाय नमः।।2।। (दक्षिण की ओर)

सत्य न्यायकारी प्रभु और उसकी सृष्टि मे सत्य न्यायकर्ता सभासदों के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् सानुगाय वरुणाय नमः।।3।। (पश्चिम की ओर)

सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्तों के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् सानुगाय सोमाय नमः।।4।। (उत्तर की ओर)

पुण्यात्माओं को आनन्दित करने वाले और पुण्यात्मा लोगों के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् मरुद्भ्यो नमः।।5।। (द्वार की ओर)

प्राण के रक्षक परमात्मा के लिये यह बलि भाग है। प्राण, जिनके रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है, उनके रक्षक परमात्मा के लिए यह बलि भाग है।

ओ३म् अद्भ्यो नमः।।6।। (जल की ओर)

सबको आनन्द देने वाले प्रभु के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् वनस्पतिभ्यो नमः।।7।। (मूसली और ओखली की ओर)
(जिनसे वर्षा अधिक होती है और फलादि से जिनसे जगत् का उपकार होता है जो रक्षा करने योग्य है, उनके लिये बलि भाग है)

ओ३म् श्रियै नमः।।8।। (ईशान कोण की ओर)
जो सबसे सेवा करने योग्य परमात्मा है, उसकी सेवा से राज्य श्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये, उसी के लिये बलि भाग है।

ओ३म् भद्रकाल्यै नमः।।9।। (नैर्ऋत्य कोण की ओर)
जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति है उसी के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् ब्रह्मपतये नमः।।10।। (मध्य में)
जो वेद के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना और विद्या प्रचार के लिये उद्योग अवश्य करना चाहिये, उसी के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् वास्तुपतये नमः।।11।। (मध्य में)
वास्तुपति, अर्थात् जो गृह–सम्बन्धी पदार्थों के पालन करने वाले मनुष्य का ईश्वर सर्वत्र सहाय होना चाहिये, उसी के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।।12।। (ऊपर की ओर मध्य में)
संसार के प्रकाशक ईश्वर के गुण तथा विद्वान् लोगों के लिये यह बलि भाग है।

ओ३म् दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः।।13।। (ऊपर की ओर मध्य में)
दिन में विचरने वाले प्राणियों से उपकार लेने तथा उनको सुख देना मनुष्य का काम है, उन्हीं के लिये यह बलि–भाग है।

ओ३म् नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।।14।। (ऊपर की ओर मध्य में)
रात्रि में विचरने वाले प्राणियों से उपकार लेना तथा उनको सुख देना मनुष्य का काम है, उन्हीं के लिये यह बलि–भाग है।

ओ३म् सर्वात्मभूतये नमः।।15।। (पीठ की ओर)
सब में व्याप्त ईश्वर की सत्ता को सदा ध्यान में रखना चाहिये, उसी के लिये यह बलि–भाग है।

ओ३म् पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।।16।। (दक्षिण की ओर)
पितरों के लिये यह स्वधा अन्न निकालता हूँ, उन्हीं के लिये यह बलि–भाग है। मनुस्मृति 2/57/91

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।। 2.94

(नमः शब्द का अर्थ यह है कि अभिमान रहित हो के दूसरे का मान्य करना।)

उक्त बलि भाग गाय को जिमा देवें अथवा अग्नि को अर्पित कर देवें।

इसके अनन्तर निम्न श्लोक बोलकर कुत्तों, कंगालों, पतितों/चांडालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग–अलग बाँटकर देवें।

शुनाञ्च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि।।

(मनु॰ 3/92)

यह वेद और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि है।

पतले पके हुए चावल को भी 'यवागू' कहा जाता है (देखें–आयुर्वेद के ग्रंथ, कर्काचार्य का भी मत)।

।। इति बलिवैश्वदेवयज्ञविधिः ।।

अतिथि–याग

अतिथि कौन होता है ? 'अतिथि प्रभावृतः' जो किसी की तिथि निश्चित न हो और वह श्रीमान् गृह में आ जाये तो उसको अतिथि कहते हैं। उसको नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराना, उदर की पूर्ति करना, उसको **अतिथि याग** कहते हैं। यजमान कहता है कि हे अतिथि ! आ तू मेरे गृह के साकल्य का पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दीजिए। देखो, पुण्यवान् के गृहों में ही बुद्धिमान् अतिथि आते रहते हैं। कौन है ? जो बुद्धिमान् तपस्वी होता है, वह जो गृह में आता है, अतिथि बनकर के वह अपने पुण्यों को त्याग देता है। जब वह गृह को त्याग देता है तो वह 'पुण्यात् पुण्यात् देवस्तः' वेद का ऋषि कहता है कि पुण्यवान् पुरुष होते हैं, जिन गृहों में महापुरुष आते रहें और महापुरुषों को तरंगें होती रहें। वह अपने शब्दों के चित्रों का गृह में त्याग देता है।
अतिथि का अभिप्रायः यह है कि वह अपने पुण्य को त्याग देता है और वह अपने यजमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है और हृदय में प्रसन्नता को मुक्त कर देता हैं मानो वह अतिथि–यज्ञ कहलाया गया है। (ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज)

"अतिथियज्ञ" जिसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है। जो पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल–कपट–रहित, नित्यभ्रमण करने वाले मनुष्य होते हैं, उनको 'अतिथि' कहते हैं।

।। इति अतिथियज्ञ (याग) ।।

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्।। 2.110

पाक्षिक यज्ञ

"स्वर्गाय हि वै लोकाय दर्शपूर्णमासौ इज्येते"

(तै.स. 2.2.5.)

(निश्चय ही स्वर्ग की प्राप्ति के लिए ही अमावस्या और पूर्णिमा के दिन यज्ञ किये जाते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या के दिन किये जाने वाले यज्ञों को 'दर्शपूर्णमास' कहा जाता है।)

पौर्णमासी और अमावस्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र (देवयज्ञ) या विशेष यज्ञ में स्थालीपाक (मोहन भोग, मीठा भात, खीर, लड्डू आदि) की आहुतियाँ देवें : [मोहन भोग–सेर भर मिश्री के मोहन भोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केसर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा सब डालकर मोहन भोग बनाना।]

पौर्णमासी

स्थालीपाक की तीन आहुतियाँ इन मंत्रों से दें:

ओ३म् अग्नये स्वाहा।।1।।

अर्थ :– ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है।

ओ३म् अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा।।2।।

अर्थ :– प्राण (सब प्राणियों के जीवन का हेतु) और अपान (दुःख के नाश का हेतु) के स्वामी जगदीश के लिये यह सुन्दर आहुति है।

ओ३म् विष्णवे स्वाहा।।3।।

अर्थ :– सर्वव्यापक परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है।

अब घृत की चार आहुतियाँ दें।

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदन्न मम।।1।।
ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे–इदं न मम।।2।।
ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय–इदं न मम।।3।।
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः–इदं न मम।।4।।

पूछे न जाने पर कुछ भी न बोलना चाहिए। अन्याय से पूछे जाने पर मेधावी जानता हुआ भी लोगों में मूर्ख की तरह आचरण करे।

उपर्युक्त आहुतियों के अतिरिक्त निम्नलिखित वेद मन्त्रों से चार घृताहुतिया भी दे सकते हैं :

ओ३म् पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय। तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम स्वाहा।।1।।

अथर्व॰ 7।80।1।।

मन्त्रार्थ :– (पश्चात्) पीछे (पूर्णा) पूर्ण (पुरस्तात्) पहले (उत) और (मध्यत) मध्य में (पौर्णमासी) {पूर्ण} पौर्णमासी {सम्पूर्ण परिमेय वा आकारवान् पदार्थों की आधार शक्ति, परमेश्वर} (उत् जिगाय) सब से उत्कृष्ट हुई है। (तस्याम्) उस {शक्ति} में (देवैः) उत्तम गुणों और (महित्वा) महिमा के साथ (संवसन्तः) निवास करते हुए हम (नाकस्य) सुख की (पृष्ठे) ऊंचाई पर (इषा) पुरुषार्थ से (सम्) यथावत् (मदेम) आनन्द भोगें।

भावार्थ :– पूर्णिमा का यज्ञ करने वाले सुखी होते हैं, सब प्रकार परिपूर्ण होने से पौर्णमासी को पूर्णिमा कहते हैं। इस समय जो लोग देवों की सभा में यज्ञ में संलग्न होते हैं वे अपनी महिमा से स्वर्ग–धाम प्राप्त करते हैं।

ओ३म् वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे। स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् स्वाहा।।2।।

अथर्व॰ 7।80।2।।

मन्त्रार्थ :– (वयम्) हम लोग (वृषभम्) सर्वश्रेष्ठ, (वाजिनम्) महा बलवान् (पौर्णमासम्) पौर्णमास {सम्पूर्ण परिमेय पदार्थों के आधार परमेश्वर} का (यजामहे) आह्वान् करते हैं। (सः) वह (नः) हमें (अक्षिताम्) बिना घटी हुई और (अनुपदस्वतीम्) कभी न घटने वाली (रयिम्) सम्पत्ति (ददातु) देवें।

भावार्थ :– पौर्णमासी बल और अन्न से युक्त होती है इसलिये हम सब उसका आह्वान् करते हैं। इस पूर्णिमा यज्ञ से अविनाशी धन प्राप्त होता है।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्
स्वाहा।।3।।

अथर्व० 7।80।3।।

मन्त्रार्थ :– हे (प्रजापते) प्रजा के पालक परमेश्वर ! (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरे किसी ने (परिभूः) व्यापक होकर (एतानी) इन (विश्वा) सब (रूपाणि) रूप वाले {आकार वाले} पदार्थों को (न) नहीं (जजान) उत्पन्न किया है। (यत्कामाः) जिस वस्तु की कामना वाले हम (ते) तेरी (जुहुमः) स्तुति करते हैं, (तत्) वह (नः) हमारे लिये (अस्तु) सिद्ध होवे, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) बने रहें।
भावार्थ :– परमात्मा ही सर्व–जगत् का निर्माता और विधाता है। उसके आह्वान् से हमारी सब प्रकार की शुभकामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं और सब प्रकार का ऐश्वर्य और सम्पत्ति भी उसकी कृपा से प्राप्त होती है।

ओ३म् पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः
स्वाहा।।4।।

अथर्व० 7।80।4।।

मन्त्रार्थ :– (पौर्णमासी) पौर्णमासी {सम्पूर्ण परिमेय पदार्थों की आधार शक्ति} (अह्नाम्) दोनों के बीच (रात्रीणाम्) रात्रियों के (अतिशर्व रेषु) अत्यन्त अन्धकारों में (प्रथमा) पहिली (यज्ञिया) पूजायोग्य (आसित्) हुई है। (यज्ञियें) हे पूजा योग्य शक्ति (ये) जो (त्वाम्) तुझे (यज्ञै) पूजनीय व्यवहारों से (अर्धयन्ति) पूजते हैं, (अमी) ये सब {वर्तमान} और (ते) वे {आगे और पीछे होने वाले} (सुकृतः) सुकर्मी लोग (नाके) आनन्द में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होते हैं।
भावार्थ :– पूर्णिमायज्ञ अवश्य करना चाहिए। इससे सुख विशेष की

प्राप्ति होती है अर्थात् पूर्णिमा दिन में और रात्रि में पूजन योग्य है। हे पूर्णिमा ! तेरा आह्वान् करते हैं।

अमावस्या

स्थालीपाक की तीन आहुतियाँ इन मंत्रों से दें:

ओ३म् अग्नये स्वाहा।।1।।

अर्थ: ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है।

ओ३म् इन्द्राग्नीभ्याम् स्वाहा।।2।।

अर्थ: ज्ञानस्वरूप जगत् के स्वामी के लिये यह सुन्दर आहुति है।

ओ३म् विष्णवे स्वाहा।।3।।

अर्थ: सर्वव्यापक परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है।
अब घृत की चार व्याहृति आहुतियाँ दें।

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम।।1।।
ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे—इदन्न मम।।2।।
ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय—इदन्न मम।।3।।
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम।।4।।

उपर्युक्त आहुतियों के अतिरिक्त अग्रलिखित वेद मन्त्रों से चार घृताहुतियाँ भी दे सकते है।

ओ३म् यत् तें देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा। तेना नो यज्ञं पिंपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् स्वाहा।।

अथर्व॰ 7।79।1।।

मन्त्रार्थ :— हे (अमावास्ये) अमावास्या! {सब के साथ बसी हुई शक्ति परमेश्वर !} (यत्) जिस कारण से (ते) तेरी (महित्वा) महिमा से (संवसन्तः) यथावत् बसते हुए (देवाः) विद्वानों ने (भाग धेयम्) अपना सेवनीय काम (अकृण्वन्) किया है। (तेन) उसी से, (विश्ववारे) हे वरने योग्य शक्ति ! (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ {पूजनीय व्यवहार} को (पिपृहि) पूरा कीजिए। (सुभगे)

हे महान् ऐश्वर्य वाले भगवन् ! (नः) हमें (सुवीरम्) बड़े वीरों वाला (रयिम्) धन (धेहि) प्रदान कीजिए।
भावार्थ :– अमावस्या के यज्ञ से उत्तम गुणयुक्त संतान की प्राप्ति होती है।

**ओ३म् अहमेवास्म्यमावास्या३मामावसन्ति सुकृतो मयीमे।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे स्वाहा।।**

अथर्व॰ 7।79।2।।

मन्त्रार्थ :– (अहम्) मैं (एवं) ही (अमावास्या) अमावास्या {सब के साथ बसी हुई शक्ति} (अस्मि) हूँ, (मयि) मुझ, में {वर्तमान होकर} (इमे) ये सब (सुकृतः) सुकर्मी लोग (माम्) लक्ष्मी मे अर्थात् मेरी शरण में (आ वसन्ति) यथावत् वास करते हैं । (मयि) मुझ में (उभये) दोनों प्रकार के (सर्वे) सब प्रकार के (देवाः) दिव्य पदार्थ अर्थात् (साध्याः) साधने योग्य {स्थावर} (च) और (इन्द्रज्येष्ठाः) जीव को प्रधान रखने वाले (जंगम) पदार्थ (सम् = समेत्य) मिलकर (अगच्छन्त) प्राप्त हुए हैं।
भावार्थ :– विद्वान् और कर्मकाण्डी लोग प्रभु भक्ति के लिये इस रात्रि की प्रतीक्षा मे होते हैं। प्रभु के गुण कीर्तन द्वारा उसका आशीर्वाद चाहते हैं और अपने हृदय में ब्रह्मतेज को धारण करने का प्रयास करते हैं।

**ओ३म् आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्ज पुष्टं वस्वावेशयन्ती।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्ज दुहाना पयसा न आगन्
स्वाहा।।3।।**

अथर्व॰ 7।79।3।।

मन्त्रार्थ :– (वासूनाम) निवास स्थानों {लोकों} का (संगमनी) संयोग करने वाली, (ऊर्जम्) पराक्रम और (पुष्टम्) पोषण तथा (वसु) धन (आवेशयन्ती) दान करती हुई (रात्री) सुख देने वाली शक्ति (आ अगन्) आई है। (अमावास्यायै) उस अमावस्या {सब के साथ वास करने वाली शक्ति, परमेश्वर} को (हविषा) पूरी श्रद्धा भक्ति से (विधेम) हम पूजे जो (ऊर्जम्) पराक्रम को (पयसा) ज्ञान के साथ (दुहाना) पूर्ण करती हुई वह (नः) हमें (आ अगन्) प्राप्त हुई है।

भावार्थ :– अमावस्या यज्ञ से अन्न, धन की प्राप्ति होती है।

**ओ३म् अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रुपाणिं परिभूर्जजान।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्
स्वाहा।।4।।**

अथर्व० 7।79।4।।

मन्त्रार्थ :– हे (अमावास्ये) अमावस्या! अर्थात् सर्व व्यापक परमात्मा ! (त्वत्) तुझ से (अन्यः) भिन्न कोई दूसरा (परिभूः) व्यापक हो कर (एतानि) इन (विश्वा) सब (रूपाणि) रूप वाले {आकार वाले} पदार्थों को (जजान) उत्पन्न (न) नहीं कर सकता। (यत्कामाः) जिस वस्तु की कामना वाले हम (ते) तेरी (जुहुमः) स्तुति करते है, (तत्) वह (नः) हमें प्राप्त (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें।
भावार्थ :– अमावस्या की रात्रि में सब पदार्थ घटाटोप अन्धकार से घिर जाते हैं, उसके विलीन होने पर सब दिखाई देने लगते हैं, प्रलय की महारात्रि जब तक समाप्त न हो परमात्म देव जब तक सृष्टि की रचना नहीं करते। अमावस्या के यज्ञ से कामनाओं की पूर्ति होती है।

इमं लोकं मातृभक्त्या, पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरु शूश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते।। 2.233

नैमित्तिक पाठ

जलपान–मन्त्र

ओ३म् श्वा॒त्राः पी॒ता भ॑वत यू॒यमा॑पोऽअ॒स्माक॑म॒न्तरु॒दरे॑ सु॒शेवा॑ः।
ताऽअ॒स्मभ्य॑मय॒क्ष्माऽअ॑नमी॒वाऽअना॑गसः॒ स्वद॑न्तु दे॒वीर॒मृता॑ऽऋता॒वृधः॑।।

य॰ 4।12।।

मन्त्रार्थ :– (यूयम्) ये (आपः) जल (पीता) पीये जाने पर (अस्माकम्) हमारे (उदरे) उदर (अन्तः) में (श्वात्राः) प्रगतिदाता तथा रक्षक होकर (सुशेवाः) अत्यन्त सुखकारक (भवत) होवे। (ताः) ये (ऋतावृधः) जीवन यज्ञ के वर्धक (देवीः) दिव्यगुण वाले (अनागसः) शुद्ध जल (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अयक्ष्माः) यक्ष्मा विनाशक (अनमीवाः) रोग निवारक (अमृताः) जीवनदायक हो कर (स्वदन्तु) स्वाद दें।

भावार्थ :– जीवनाधार भगवन् ! आपकी कृपा से जीवन–यज्ञ का बढ़ाने वाला जल हमारे जीवन को यज्ञमय बनाकर सचमुच मधुर बना दे।

दूधपान–मन्त्र

ओ३म् सं सिं॑ञ्चामि॒ गवां॑ क्षी॒रं समाज्ये॑न॒ बलं॒ रसं॑म्।
संसि॑क्ता अ॒स्माकं॑ वी॒रा ध्रु॒वा गावो॑ मयि॒ गोप॑तौ।।

अ॰ 2।26।4।।

मन्त्रार्थ :– मैं (गवाम्) गौ का (क्षीरम्) दूध (सं + सिंचामिं) (दूध पीने का संकत) अपने भीतर सींचता हूँ, अर्थात् भली भाँति {जैसे पौधों को सीचा जाता है} पीता हूँ और (आज्येन) घृत के साथ (बलम्) शक्ति तथा (रसम्) स्वाद और सार ५.i (सम्) भली प्रकार पीता हूँ। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर, सन्तान आदि भी (संसिक्तः) भली प्रकार दूध से सिंचित हों, (मयि) मुझ (गोपतौ) गौरक्षक के पास (गावः) गोएं (ध्रुवा) सदा रहें।

भावार्थ :– हे भगवन् ! इस दुग्धपान से मेरे भीतर बल तथा रस का संचार हो, हमारे पास गौधन सदा स्थिर रहे, इसका अभाव न हो, हमारी सन्तान भी दूध पीकर बलवान् हो।

माता की सेवा से यह लोक, पिता की सेवा से अन्तरिक्षलोक तथा गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

शरबत, सरदाई आदि अन्य पदार्थ पीते समय—मन्त्र

ओ३म् स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः।।

ऋ॰ 9।1।1।।

मन्त्रार्थ :— हे (सोम) शान्तिधाम ! रसमय प्रभो ! (स्वादिष्ठया) स्वादिष्ठ (मदिष्ठया) मदिष्ठ {अत्यन्त आनन्ददायक} (धारया) धारा के द्वारा, तू हमें (पवस्व) पवित्रकर, हमने यह पेय (इन्द्राय + पातवे) आत्म तृप्ति के लिये (सुतः) तैयार किया है।

भावार्थ :— हे प्रभो ! हमने यह पेय आत्मतृप्ति के लिये, आत्मा के निवासगृह की परि–पुष्टि के लिये तैयार किया है। तेरी कृपा से यह हमारे लिये पोषक हो, विषयवासना की इससे शान्ति हो और यह रस हमारे शरीर के दोषों का शोधक हो।

भोजन—आरम्भ मन्त्र

ओ३म् अन्नपतेऽअन्नस्य नो देह्य नमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष उर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

यजु॰11।83।।

मन्त्रार्थ :— हे (अन्नपते) अन्न के स्वामिन् परमात्मन् ! (नः) हमें (अनमीवस्य) रोग रहित करने वाला (शुष्मिणः) बलकारक (अन्नस्य) अन्न (देहि) दीजिए और इस अन्न के (दातारम्) दाता को (प्र–प्र तारिषः) इस लोक से पार लगाइये और (नः) हमारे (द्विपदे) दो पैर वाले (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों के लिये (ऊर्जम्) बलकारक अन्न (धेहि) दीजिए।

ओ३म् स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे।
अस्माकमविता भव।।

ऋ॰ 1।187।2।।

मन्त्रार्थ :— हे परमात्मन् ! (त्वा) आपके रचे (स्वादो) स्वादु (पितो) पीने योग्य जल को तथा (मधो) मधुर (पितो) पालन करने वाले अन्न को (वयम्)

हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं। हे प्रभो ! हमारी आपसे प्रार्थना है कि इस प्रकार अन्न और पान के दान से आप (अस्माकम् + अविता) हमारी रक्षा करने वाले (भव) होवें।

भावार्थ :– हे प्रभो ! तेरी कृपा से सबको भोग सामग्री मिलती है। ऐसी कृपा कीजिए कि हमारा खाया पीया हमारे बल तथा स्वास्थ्य का बढ़ाने वाला हो। प्रभो ! संसार मे अन्नदान करने वालों की सदा सर्वविध वृद्धि हो, उन्हें किसी प्रकार की क्षति न हो, प्राणीमात्र को बलकारक, स्वास्थ्यसाधक, जीवनदायक अन्न सदा अनायास मिलता रहे।

भोजन समाप्ति – मन्त्र

ओ३म् मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी।।

ऋ॰ 10 ।117 ।6 ।।

मन्त्रार्थ :– (अप्रचेताः) मूढ़ अज्ञानी तो (अन्नम्) अन्न को (मोघम्) व्यर्थ (विन्दते) प्राप्त करता है। (सत्यम्) सच (ब्रवीमि) कहता हूँ, (सः) वह तो (तस्य) उसका (वधः) वध करने वाला (इत्) ही होता है। वह (न) न तो (अर्यमणम्) राजा का (पुष्यति) पालन करता है और (नो) न ही (सखायम्) बन्धु का, तथ्य तो यह है कि (केवलादी) अकेला खाने वाला (केवलाघो) केवल पापमय (भवति) होता है।

भावार्थ :– हे प्रभो ! हमें भरपूर अन्न दें। हम खिलायें तथा खायें। प्रभो ! बांट कर खायें, राष्ट्र को दें, बन्धुओं को दें और खाया हुआ अन्न हमारा पोषक हो, घातक न हो।

औषध खाते पीते समय पठनीय मन्त्र

ओ३म् सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।।

य॰ 35 ।12 ।।

अश्रेष्ठ से भी श्रद्धा के साथ विद्या ग्रहण कर लेनी चाहिए। नीच से भी परम धर्म तथा दुष्कुल से कन्या रत्न ग्रहण कर लेना चाहिए।

मन्त्रार्थ :– हे भगवन् ! (औषधयः) औषध (नः) हमारे लिये (आपः) जल समान (सुमित्रियाः) मित्रतुल्य हितकारक (सन्तु) हों, (तस्मै) उस रोगादि के लिये (दुर्मित्रियाः) दुःखदायिनी (सन्तु) होवें, (यः) जो रोग (अस्मान्) हमको (द्वेष्टि) दुःख देता है (च) और (वयम्) हम (यम्) जिसको (द्विष्मः) पसन्द नहीं करते।

भावार्थ :– हे प्रभो ! शरीर रोगग्रस्त हो रहा है और इसी कारण मन भी अशान्त हो रहा है। हम उसके वारण के लिये औषध–सेवन करने लगे हैं। कृपालु ! आपकी कृपा से यह औषध हमारे रोग का समूल उन्मूलन करके हमें सुख शान्ति देने वाला हो।

मार्ग चलते समय पठनीय मन्त्र

ओ३म् अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु।।

ऋ॰ 6।51।16।।

मन्त्रार्थ :– हम (अपि) जिस भी (पन्थाम्) मार्ग पर (अगन्महि) चलें (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक, सुख से (अनेहसम्) निर्दोष निरापद् (गाम्) भूमि पर चलें (येन) जिसके द्वारा मनुष्य (विश्वाः) सब (द्विषः) द्वेषों को (परि+ वृणक्ति) सर्वथा परिवर्जित करता है और (वसु) धन (विन्दते) प्राप्त करता है।

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि।।

ऋ॰ 5।51।15।।

मन्त्रार्थ :– (सूर्याचन्द्रमसौ +इव) सूर्य और चन्द्रमा के समान हम (पन्थाम् + अनु) मार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (चरेम) चलें (पुनः) और सदा (ददता) दाता (अघ्नता) अहिंसक और (जानता) ज्ञानी के (सङ्गमेमहि) साथ एक भाव होकर जीवन में आगे बढ़ें।

भावार्थ :– हे प्रभो! हम यात्रा करने लगे हैं तेरी कृपा से हमारी यह यात्रा सफल हो निर्विघ्न समाप्त हो मार्ग मे हमें द्वेषियों, विरोधियों का संग न हो वरन् दानशील, ज्ञानशील, शान्तिशील, सज्जनों के मेल से हमारे उदेश्य

की सिद्धि में हमें सहायता मिले। सबके गतिदाता! सूर्य चन्द्र की भाँति हमारी गति सर्वथा निर्बाध हो जिस भाँति सूर्य, चन्द्र निश्चित मार्ग पर चलते हुए, भटके बिना सबके लिये मार्ग का प्रकाश करते हैं, वैसे ही हम सुमार्गगामी होते हुए अपने पराये सभी के लिये हितकारी हों।

यात्रा पर जाते हुए के लिये मन्त्रमय आशीर्वाद

**ओ३म् सुगः पन्थां अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते।
नात्रावखादो अस्ति वः।।**

ऋ॰ 1।41।4।।

मन्त्रार्थ :– हे (आदित्यासः) सूर्यसमान सन्मार्गगामी महाशयो ! इस संसार में (ऋतंयते) सत्पथगामी के लिये (पन्थाः) मार्ग (सुगः) सुगम तथा (अनृक्षरः) विघ्न–बाधा विहीन हो। (अत्र) इस मार्ग में (वः) आपको (अवखादः) हानि कदापि भी (न) न (अस्ति) हो।

भावार्थ :– हे सर्व सुख–विधाता ! हमारे ये जन यात्रा पर जा रहे हैं। इन्हें हम आपके भरोसे पर भेज रहे हैं। इनका मार्ग सुखदायी, विघ्न–कण्टक–विहीन हों। इन्हें कहीं भी किसी भाँति का कष्ट न हो।

कार्य आरम्भ करते समय पठनीय मन्त्र

**ओ३म् इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वादन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः।।**

ऋ॰ 1।57।4।।

मन्त्रार्थ :– हे (पुरुष्टुत) अनेक विधस्तुति भाजन (प्रभूवसो) प्रभूतधन एवं वास देने वाले (इन्द्र) अनन्तैश्वर्य्य संपन्न भगवन् ! (इमे) ये प्रत्यक्ष दृश्यमान तथा (ते) परोक्ष में विद्यमान् तथा (वयम्) हम (ये) जो हैं (ते) वे (त्वा) तुझको (आरभ्य) कार्य प्रारम्भ में स्मरण करके (चरामसि) विचरते हैं, क्योंकि हे (गिर्वण) प्रार्थना स्वीकार करने वाले प्रभु ! (त्वत्+अन्यः) तुझ से भिन्न कोई दूसरा (गिरः) हमारी प्रार्थनाओं को (नहि) नहीं (सघत्) प्राप्त कर पाता अथवा टाल सकता। हे (हर्य) कमनीय

विष से भी अमृत ग्रहण कर लेना चाहिए। बालक से भी सुभाषित, दुश्मन से भी सद्चरित्र तथा कूड़े से भी सोना ले लेना चाहिए।

प्रभो ! (क्षोणीः + इव) भूमियों की भाँति (नः) हमारे (तत्) उस (वचः) प्रार्थना–वचन को (प्रति) [प्रतिपाल] मान।

भावार्थ :– हे प्रभो ! हमें पूर्ण विश्वास है कि तू हमारी प्रार्थनाओं को अवश्य सुनता है। तेरे बिना और किस के पास जायें? किसको मनोभाव सुनायें? हमारी दृढ़ धारणा है कि जगत् में कदाचित् ही कोई हमारी बात टाल सके। प्रभो ! हम बुरे हैं तो भी तेरे हैं, अच्छे हैं तो भी तेरे हैं, तुझे स्मरण करके कार्य आरम्भ करने लगे हैं, हे दीनानाथ ! अवश्य हमारी प्रार्थना मान।

मन से बुरे विचारों को हटाने के लिये पठनीय मन्त्र

ओ३म् परोऽपेहि मनस्पाप किमशंस्तानि शंससि।
परेहि न त्वां कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।।

अ॰ 6।45।1।।

मन्त्रार्थ :– हे (मनस्पाप) मन के पाप। तू (परेहि=परा–उप–एहि) तू दूर भाग जा। हे पापी मन (किम्) क्यों (अशस्तानि) निन्दित बातों को (शंससि) सोचता है (परेहि) हट जा। हे मन के पाप। (त्वाम्) तुझको (न+कामये) मैं नहीं चाहता (वृक्षाम् + वनानि) वृक्षों और वनों अर्थात् निर्जन स्थानों में (संचर) विचर। (मे) मेरा (मनः) मन तो (गृहेषुं) घर के कार्य व्यवहार में तथा (गोषु) गौ आदि हितकारी पशुओं में लगा हुआ है।

भावार्थ :– मेरा मन अनायास कल्पनाओं मे उलझ कर कलपता रहता है। अज्ञान के कारण बहुधा पाप वासना आ घेरती हैं। हे प्रभु ! तू ही इन उलझनों को सुलझा सकता है मुझे शक्ति दें ताकि पापविचारों से बच सकूँ। आपकी एसी कृपा हो कि मेरा मन या तो आप में निमग्न रहे अथवा संसारोपकार मे संलग्न रहूँ।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः, प्राणिनां बुद्धिजीविनः।

बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः, नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।। 1.96

अथ नवशस्येष्टिः संवत्सरेष्टिश्च

जब–जब नवीन अन्न आवे, तब–तब नवशस्येष्टि करके नवीन अन्न के भोजन का आरम्भ करें और संवत्वर के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति देकर यज्ञ करें। (पांच आज्याहुति)

ओ३म् पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः।
तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा।।1।।

अर्थ–इस यज्ञ में उस ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा को मैं स्मरण करता हूँ। जिसके ऐश्वर्य को बतलाने के लिए अनेक प्रकार की शोभा से परिवेष्टित ये पृथिवी, आकाश, दिशा और उपदिशादि विद्यमान् हैं। उसकी कृपा से हमारे सब रक्षा व भोग के साधन कल्याणकर हों।

ओ३म् यन्मे किञ्चिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्।
तन्मे सर्वꣳ समृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳ स्वाहा।।2।।

अर्थ–हे पाप नाशक परमात्मन्! आपकी कृपा से इस निर्दुष्ट कृषिकर्म में जो कुछ मेरा अत्यन्त इष्ट अन्नादि है वह सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहने वाले मेरे लिए अच्छी प्रकार बढ़ता रहे।

ओ३म् सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा।। इदमिन्द्राय–इदन्न मम।।3।।

अर्थ–इस यज्ञ के करने से हमें धन–धान्य, ऐश्वर्य, भूमि, वर्षा, महत्ता, श्रेष्ठता, शोभा व लक्ष्मी प्राप्त हो। हे परमात्मन्! आप हमारी सन्तानों की रक्षा करें। यही मेरी अभिलाषा है। यह सब आपका है मेरा नहीं।

ओ३म् यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम् इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताꣳसा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा। इदमिन्द्रपत्न्यै–इदन्न मम।।4।।

अर्थ–जिस कृषि के होने पर समस्त वैदिक व लौकिक कर्मों की समृद्धि होती है, ऐश्वर्य की रक्षिका उस कृषि की मैं स्तुति करता हूं। मेरे प्रत्येक कर्म में यह सहायक व बाधा न डालने वाली बने। यह मेरी अभिलाषा है यह सब कृषि के लिए है मेरे लिए नहीं।

ओ३म् अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता।

खलमालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवाꣳसा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा। इदं सीतायै—इदन्न मम।।5।। (पा॰ गृह्य 2/17/9)

अर्थ—घोड़े तथा गाय आदि पशुओं से भरी गुणमयी जो पृथिवी बिना प्रमाद के प्राणियों को धारण कर रही है। मैं इस कर्म में क्यारी की मालाओं से सुशोभित स्थिर उर्वरा भूमि को स्मरण करता हूं। वह मेरे लिए पीड़ा देने वाली न बने। यही मेरी अभिलाषा है। यह सब कृषि के लिए है—इसमें मेरा कुछ नहीं।

स्थालीपाक की चार आहुतियाँ

ओ३म् सीतायै स्वाहा।। मैं कृषि के लिए अपने को समर्पित करूँ।

ओ३म् प्रजायै स्वाहा।। मैं सन्तति की अभिलाषा करूँ।

ओ३म् शमायै स्वाहा।। मैं शान्ति का आवाहन करूँ।

ओ३म् भूत्यै स्वाहा।। मैं कल्याण की कामना करूँ।

अब पाँचवी आहुति—स्विष्टकृत होमाहुतिमन्त्र (घी से या भात से) पश्चात् अष्टाज्याहुति तथा चार व्याहृति की ऐसे बारह आज्याहुति देकर पूर्णाहुति करें। स्रुवा को घृत से भरके निम्नलिखित मन्त्र से तीन बार बोल कर पूर्णाहुति करें—

ओ३म् सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा।।

मंगलकार्य

गर्भाधानादि से लेकर सन्यास—संस्कारपर्यन्त पूर्वोक्त कार्य और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।।1।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु।।2।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतये।।3।। —सा.उ. 1/4/1–3

यज्ञोपवीत सर्वस्व

–ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज

पूर्णिमा के दिवस ब्रह्मचारी को बन्धनसूत्र में कटिबद्ध कर दिया जाता है।

यज्ञोपवीत गुणों का प्रतीक

त्रेताकाल में महर्षि लोमश, महर्षि नारद, काकभुशुण्ड तथा गरुड़ आदि ऋषियों का समाज हुआ। काकभुशुण्ड जी ने प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि–

हमारे ऊपर तीन ऋण हैं, उनसे उऋण होना अनिवार्य है। जो देवताओं के ऋण से उऋण होने का प्रयास करता है, जो देवकन्या देवताओं की पूजा करने वाली हो, वे यज्ञोपवीत के पात्र हैं। एक धागा ऋषि–ऋण का प्रतीक है। **ऋषि–ऋण वह पदार्थ है कि ऋषियों ने जो हमें आदेश दिया, जो हमारे लिए मर्यादा बांधी, उस मर्यादा पर चलना, उसका आदर करना और उस पर अपना जीवन बनाना, यह हमारे ऊपर एक ऋण है** इससे उऋण होने का प्रयास करें।

दूसरा देव–ऋण है। **देवता वे हैं जो हमें देते हैं, लेते नहीं। वे हमें जीवन, आयु और मानवता देते हैं। इनकी पूजा करने के लिए यज्ञ करना चाहिए।** सूर्य आदि ग्रहों तक सुगन्धि पहुंचाकर हम मनोकामना के अनुकूल तेज प्राप्त करें, इससे हमको सब विज्ञान आ जाएगा।

तीसरा, मातृ–ऋण है। जिस माता के गर्भ से हमारा जीवन बनकर हम ऋषित्त्व को प्राप्त हो जाते हैं, वह माता पूजनीय है। कीड़ों को जन्म देने वाली नहीं। पृथ्वी माता है, संस्कृति माता है। इनका भी आदर करना है।

जिस समय यजमान यज्ञशाला में विराजमान होता है तो वह यज्ञोपवीत को धारण करता है। वह यज्ञोपवीत परम–पवित्र कहलाता है। यज्ञों का उपवीत है। ऋण को उतारने के लिए उपवीत का विधान किया जाता है।

जो यज्ञ के समीप विराजमान होता है, उसको ऋणों से उऋण होने का प्रयास करना चाहिए। जब तीन ऋणों से उऋण हो जाते हैं, तो उस समय यज्ञ के समीप जाने का हमें अधिकार होता है। परम–पवित्र का अभिप्राय यह है कि मन–वचन–कर्म से पवित्र हो जाएं, यज्ञ से पवित्र हो जाएं। ब्रह्म–विद्या से हमारा जीवन लदा

हुआ होना चाहिए। ब्रह्म-विद्या में लिप्त हमारे शरीर में ही तो परम-पवित्रता होती है।

यज्ञोपवीत का विज्ञान

ब्राह्मण ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत देते समय कहते हैं कि-हे ब्रह्मचारी! इस यज्ञोपवीत की एक ब्रह्म-ग्रन्थि मानी जाती है। इसमें तीन धागे माने जाते हैं। एक-एक धागे में तीन-तीन धागों की व्याहृतियाँ होती हैं। इस परम-पवित्र यज्ञोपवीत में संसार का ज्ञान-विज्ञान ओतप्रोत रहता है। आत्मा, परमात्मा और प्रकृति, इन तीनों से ही संसार का निर्माण होता है। इन तीनों के सूचक तीन धागे हैं। तीन ही प्रकार के गुण होते हैं-रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण। तीन ही प्रकार के प्राणी होते हैं-रज, तम, सत। तीन ही प्रकार की विद्याएं हैं-ज्ञान, कर्म, उपासना। आगे तीन धागों की तीन व्याहृतियाँ हैं, ये इसकी सूचक हैं कि-

शरीर में नौ द्वार हैं। 3 × 3 = 9 व्याहृतियाँ। प्रत्येक, एक द्वार की सूचक है। इनके संगठन ऐसे माने गए हैं, जैसे दो चक्षु और एक श्रोत्र=एक व्याहृति। अब इन 9 द्वारों पर शासन करता हुआ ब्रह्मचारी इनकी तीन व्याहृतियां बना लेता है और आगे सूक्ष्मता सें जाकर इन 9 द्वारों की केवल एक ही ग्रंन्थी बन जाती है। तो उसे ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं। ब्रह्म-ग्रन्थि होकर, आत्मा-परमात्मा-प्रकृति, तीनों सुगठित होकर यह आत्मा-परमात्मा के आनन्द का अनुभव करता है। हे ब्रह्मचारी! तू इस परम-पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करके, अपने मानवत्व को जान, इस शरीर रूपी अयोध्यापुरी को जान।

यज्ञोपवीत को उपनयन भी कहा जाता है। यह इतना महान् है कि इसको धारण करने के पश्चात् मानव को अपनी वृत्तियों पर, आचार-व्यवहार पर उसका नियन्त्रण होने लगता है। **यज्ञोपवीत धारण करके भी, जो मानव दूसरों के मांस को भक्षण करते हैं, वे नारकीय कहलाते हैं। वे नारकीय इसलिए बनते हैं, क्योंकि ऋषियों का ऋण उनके समीप रहता है।** यदि वह दूसरों की वेदना को अपने में धारण करके अपने उदर में धारण कर लेते हैं तो उनकी आभा का विनाश हो जाता है। जब हम परम-पवित्र बनकर यज्ञ के समीप जाते हैं तो इसका अभिप्राय

यह है कि इन नौ द्वारों पर हमें संयम करना है।

यज्ञोपवीत का महत्व

यज्ञोपवीत वह पदार्थ है, जो हमें परमात्मा के मार्ग में जाने के लिए प्रेरित करता है। इसके धारण करने से परमात्मा का ज्ञान जाना जा सकता है। यह परम–पवित्र आर्यों का सबसे प्रथम प्रतीक है। **जब हम माता के गर्भ में आते हैं तो एक नाड़ी उसी प्रकार की होती है जैसे यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। उस नाड़ी का सम्बन्ध हमारी आत्मा तथा जीवन से होता है। वही गर्भ का प्रतीक हमें बाहर भी धारण करना चाहिए। इसका सम्बन्ध आत्मा से होता हुआ परमात्मा से हो जाता है।** इससे हमारे विचार पवित्र होने चाहिए। जब यज्ञोपवीत को धारण करके चलते हैं और अपने विचारों को पवित्र बनाते हैं, तो हमारे संकल्पों का तथा बुद्धि का सबका विचार आत्मा के द्वारा होता है और अन्तःकरण रूपी थैली में विराजमान हो जाता है।

प्रश्न–वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो परमात्मा ने वेदों में यज्ञोपवीत का मन्त्र क्यों दिया?

उत्तर–परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में इस यज्ञोपवीत को इसलिए धारण कराया है कि जिससे आत्मा, परमात्मा को भुला न दे और आत्मा का कल्याण हो सके। हमें यज्ञोपवीत को धारण कर परमात्मा के गुण गाते हुए प्रकृति को छोड़कर परमात्मा की गोद में जाना चाहिए। प्रत्येक माता–पिता–बालक यज्ञोपवीत को धारण करें, उनके विचारों में पवित्र प्रेरणा हो। आचार्य पवित्र हों; ब्रह्मचारी हों, उनके विचार ऊंचे हों। वह शिष्यों के अवगुणों को उनसे लेकर उनमें ज्ञान का प्रकाश देने वाले हों।

यज्ञशाला में यज्ञोपवीत धारण करने वाले को यज्ञ करने का अधिकार हो जाता है। यज्ञोपवीत का तात्पर्य है कि यज्ञ के समीप पवित्र होकर जाना। यज्ञोपवीत परम–पवित्र होने के कारण ही यज्ञ के लिए उसका महत्त्व रखा गया है। यज्ञोपवीत उसे धारण करना चाहिए जो तीनों ऋणों को अपने में ऋण स्वीकार करके उससे उत्रऋण होने का प्रयास करता है।

जहाँ कृष्णसार मृग स्वभावतः विचरण करता रहता है उस देश को यज्ञयोग्य स्थान समझना चाहिए इससे परे म्लेच्छ देश है।

ऋतु – अनुकूल हवन सामग्री

बसन्त ऋतु (चैत्र, वैशाख – मार्च, अप्रैल)

छरेला 4 भाग, तालीस पत्र 4 भाग, पत्रज 2 भाग, लज्जावन्ती 2 भाग, शीतल चीनी 2 भाग, कपूर 1 भाग, चीड़ 2 भाग, देवदारु 5 भाग, गिलोय 5 भाग, अगर 3 भाग, तगर 3 भाग, नागकेसर 2 भाग, इन्द्र जौ 5 भाग, गूगल 5 भाग, क़स्तूरी आधा भाग, तीनों चन्दन (सफेद, लाल, पीला) 8,8,8, भाग, जावित्री 4 भाग, जायफल 3 भाग, धूप 4 भाग, सरसों 10 भाग, कमल गट्टा 5 भाग, मजीठ 2 भाग, बनकचूर 4 भाग, दाल चीनी 2 भाग, गूलर की छाल 4 भाग, तेजफल 4 भाग, शंखपुष्पी 6 भाग, चिरायता 5 भाग, खस 8 भाग, गोखरु 5 भाग, चीली 8 भाग, गोघृत 9 भाग, पुष्करमूल 4 भाग, गोरखमुण्डी 4 भाग, ब्रह्मी 4 भाग।

ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ, आषाढ़ – मई, जून)

मुरा 4 भाग, वायविडंग 2 भाग, कपूर 1 भाग, चिरोंजी 1 भाग, नागरमोथा 1 भाग, पीला चन्दन 1 भाग, आँवला सूखा 2 भाग, चन्दन चूरा 2 भाग, ऋतुफल 1 भाग, छरेला 4 भाग, निर्मली 4 भाग, शितावर 4 भाग, खसखस 6 भाग, गिलोय 5 भाग, धूप 4 भाग, दालचीनी 4 भाग, दारुहल्दी 2 भाग, तगर 2 भाग, भोजपत्र 1 भाग, कुशा की जड़ 4 भाग, तालीस पत्र 2 भाग, पद्माख 2 भाग, लालचन्दन 2 भाग, मजीठ 1 भाग, केसर 1/8 भाग, नेत्र बाला 1 भाग, बड़ी इलायची 1 भाग और मूंग के लड्डू 8

वर्षा ऋतु (श्रावण, भाद्रपद – जुलाई, अगस्त)

काला अगर 2 भाग, पीला अगर 2 भाग, जौ 4 भाग, चीड़ 2 भाग, धूप 2 भाग, सरसों 5 भाग, तगर 2 भाग, देवदारु 2 भाग, गूगल 8 भाग, छिकनी 2 भाग, राल 2 भाग, जायफल 4 भाग, मुण्डी 5 भाग, गोला 4 भाग, निर्मली 4 भाग, कस्तूरी 1/16 भाग, मखाने 4 भाग, तेजपत्र 2 भाग, कपूर 1 भाग, बनकचूर 2 भाग, बेल 2 भाग, जटामांसी 4 भाग, छोटी इलाइची 1 भाग, वच 2 भाग, गिलोय 4 भाग, तुलसी के बीज 3 भाग, वायविडंग 2 भाग, मुण्डी 5 भाग, शहद, चन्दन का चूरा 4 भाग, नागकेसर 2 भाग, ब्राह्मी 3 भाग, चिरायता 3 भाग, उड़द के लड्डू, छुहारे 4 भाग, शंखाहुली–शंखपुष्पी 4 भाग, मोचरस 2 भाग।

ढाक की समिधा, गोघृत, चीनी, भात।

शरद ऋतु (आश्विन, कार्तिक – सितम्बर, अक्तूबर)

तीनों चन्दन (सफेद, लाल, पीला) 2, 2, 2, भाग, गूगल 8 भाग, नागकेसर 2 भाग, इलाइची बड़ी 1 भाग, गिलोय 4 भाग, चिरोंजी 2 भाग, बिदारीकन्द 2 भाग, गूलर की छाल 4 भाग, ब्राह्मी 4 भाग, दालचीनी 2 भाग, कपूरकचरी 2 भाग, मोचरस 2 भाग, पितपापड़ा 1 भाग, अगर 1 भाग, भारंगी 1 भाग, इन्द्र जौ 4 भाग, रेणु का 1 भाग, मुनक्का 4 भाग, असगन्ध 2 भाग, शीतल चीनी 2 भाग, जायफल 2 भाग, पत्रज 2 भाग, चिरायता 2 भाग, केसर 1/8 भाग, कस्तूरी 1/16 भाग, किशमिश 2 भाग, खाण्ड 8 भाग, जटामासी 2 भाग, तालमखाना 2 भाग, सहदेवी 2 भाग, ढाक की समिधा, धान की खील, क्षीर, कपूर, गोघृत, ऋतुफल।

हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष, पौष – नवम्बर, दिसम्बर)

कुट 1 भाग, मूसली 2 भाग, गन्ध कोकिला 2 भाग, पितपापड़ा 2 भाग, कपूरकचरी 2 भाग, नकछिकनी 2 भाग, गिलोय 4 भाग, पटीलपत्र 1 भाग, दालचीनी 2 भाग, भारंगी 2 भाग, सौंफ 4 भाग, मुनक्का कस्तूरी 1/16 भाग, चीड़ 1 भाग, गूगल 8 भाग, अखरोट 4 भाग, राल 2 भाग, शहद 4 भाग, मुष्करमूल 2 भाग, केसर 4 भाग, छुहारे 4 भाग, गोख 2 भाग, कोंच के बीज 2 भाग, कांटेदार गिलोय 2 भाग, लाल चन्दन 2 भाग, मुश्क बाला 2 भाग, तालीस पत्र 2 भाग, रेणु का 1 भाग, खोआ 4 भाग, बिना लवण की खिचड़ी 8 भाग, आम या खैर की समिधा, गोघृत, देवदारु।

शिशिर ऋतु (माघ, फाल्गुन – जनवरी, फरवरी)

अखरोट 4 भाग, कचूर 2 भाग, वायविडंग 2 भाग, राल 1 भाग, मुण्डी 2 भाग, मोचरस 2 भाग, गिलोय 4 भाग, मुनक्का 5 भाग, रेणु का 2 भाग, काले तिल 5 भाग, कस्तूरी 1/16 भाग, केसर 1/8 भाग, चन्दन 4 भाग, चिरायता 4 भाग, छुआरे 4 भाग, तुलसी के बीज 4 भाग, गूगल 8 भाग, चिरौंजी 2 भाग, काकड़ा सींगी 4 भाग, शतावर 4 भाग, दारुहल्दी 4 भाग, शंखपुष्पी 5 भाग, पद्माख 2 भाग, कौंच के बीज 2 भाग, मोहन भोग 15 भाग, खाँड 8 भाग।

आयु का इच्छुक पूर्वमुखी, यश का इच्छुक दक्षिणमुखी, लक्ष्मी का इच्छुक पश्चिममुखी और धर्म का इच्छुक उत्तर की ओर मुँह करके भोजन करता है

कर्म

जो मन, इन्द्रिय और शरीर से जीव चेष्टा विशेष करता है सो कर्म कहलाता है। वह शुभ, अशुभ और मिश्र भेद से तीन प्रकार का है–संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म व क्रियमाण कर्म।

संचित कर्म या संस्कार–जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है, उसको 'संचित कर्म' कहते हैं।

प्रारब्ध कर्म–जो पूर्व किए हुए कर्मों का सुख–दुःख रूप फल भोग किया जाता है उसको 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं।

क्रियमाण कर्म–वे हैं जिनको हम इस जन्म में कर रहे हैं और जिनका फल अगले जन्म में भोगेंगे। जो भी शुभाशुभ कर्म जीव करता है उसके संस्कार सूक्ष्म शरीर पर अंकित हो जाते हैं।

मृत्यु के समय कर्मों का लेखा–जोखा तैयार हो जाता है और उसी के आधार पर जीवात्मा की जाति (योनी), उसकी आयु व उसके भोग का निर्धारण होता है।

जब तक ये संस्कार चित्त में रहते हैं जीव बन्धन में रहता है।

शरीर त्यागने के पश्चात् आत्मा की गति

(ब्रह्मऋषि कृष्णदत्त जी महाराज)

जब यह आत्मा शरीर को त्यागने के पश्चात् अंतरिक्ष में जाता है, सर्वप्रथम (1) सोन्तति नाम की वायु में रमण करता है, इसके पश्चात् (2) किरणति तत्पश्चात् (3) सामभाम नाम की वायु में रमण करता है। ये तीनों शाखाएं इन्द्र नाम की वायु की हैं।

इसके ऊपर का स्थान यम नाम की वायु का है। इनकी भी तीन शाखाएं है। 1–सुभय, 2–रेधि तथा 3–घिरन्तति। यह आत्मा इनमें भी रमण करता है।

इस रमण करने का अभिप्राय यह है कि आत्मा को दूसरा शरीर ग्रहण करना है। इन छः प्रकार की वायुओं में रमण करने के पश्चात् उसकी पिछले शरीर की परिवार आदि की सभी स्मृति समाप्त हो जाती है। इसके पश्चात् जैसे कर्म होते हैं, उनके अनुकूल अन्तःकरण होता है
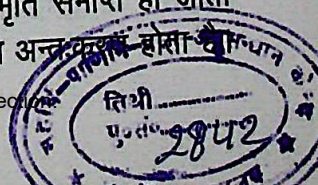
कर्म अन्तःकरण में बीज रूप में रहते हैं और उनके संस्कारों से अगला जन्म प्राप्त होता है।

यदि आत्मा के सात्विक गुण अधिक हैं, तो यह सोन्तति वायु में चला जाता है। वहां पर इसकी गति विशाल बन जाती है यदि आत्मा के साथ देवव्रत् कर्म होते हैं तो देवताओं में जिनको पितर कहते हैं, रमण करने लगता है। जितने उसके देववत् कर्म होते है। उनके अनुसार उन आत्माओं में रमण करता हुआ पुनः संसार में आवागमन में आ जाता है।

शरीर त्यागते समय अगली योनि का निश्चय करना

इस शरीर के नौ द्वार हैं। दो चक्षु, दो घ्राण, दो श्रोत्र, एक मुख, उपस्थ और गुदा। दसवां द्वार योगी का होता है, जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं।

जिसका आत्मा उपस्थ और गुदा इन्द्रियों से जाता है वे मल, मूत्र के कीड़े बनते है और उनमें ही क्रीड़ा करते हैं।

जिनका आत्मा मुख से जाता है, वे विषैले कीड़े जैसे सर्प आदि बनते है।

जिनका आत्मा घ्राण से जाता है वे अगले जन्म में मनुष्य बनते हैं। घ्राण में दो स्वर होते हैं, 1–एक चन्द्र स्वर, 2–दूसरा सूर्य स्वर। 1–जिनका आत्मा चन्द्र स्वर से जाता है वे तमोगुणी पुरुष बनते हैं। 2–जिनका आत्मा सूर्य स्वर से जाता है वे सतोगुणी या ऊंचे कर्म करते हैं, या सतोगुणी तथा रजोगुणी दोनो प्रकार के काम करते हैं।

जिनका आत्मा श्रोत्रों से जाता है वे अन्तरिक्ष में विचरने वाले प्राणी बनते हैं।

जिनका आत्मा चक्षुओं से जाता है वे जलचर प्राणी बनते हैं।

जिनका आत्मा ब्रह्मरन्ध्र से जाता ह वे सतोगुणी, सतोयुग के वासी कहलाते हैं। उनका आत्मा विमुक्त आत्माओं, जो मोक्ष के निकट जाने वाली आत्माएं हैं, में रमण किया करता है। वह यदि इस संसार में जन्म लेता है तो किसी प्रकार के उत्थान के लिए ही लेता है। **यह सिद्धान्त माता गार्गी जी का है।**

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मंत्रदम्।। 2.153

संगठन सूक्त

सब मिलकर बोलो :—

(प्रभु से प्रार्थना)

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।।

ऋ० 10।191।1।।

मन्त्रार्थ :— हे (वृषन्) सब सुखों को बरसाने वाले (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो! (अर्यः) स्वामी आप (विश्वानि) चराचर विश्व को विशेषकर योगियों को (इत्) निश्चय ही (सम्—सम्) भली—भांति (आ युवसे) प्राप्त होते हो। अतः (इळः पदे) पार्थिव देह के पद = हृदय में (सम् इध्य से) उत्तम प्रकार से प्रकाशित होते हो (सः) वह तुम (नः) हम सबको (वसूनि) सब प्रकार से निवास साधक धनों को (आ भर) प्राप्त कराओ।

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं, कीजिये धन वृष्टि को।

प्रभु के उपदेश

ओ३म् सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।

ऋ० 10।191।2।।

मन्त्रार्थ :— हे भक्तो ! तुम सब (सम+गच्छध्वम्) एक होकर प्रगति करो, (सम् वदध्वम्) उत्तम प्रकार से संवाद करो, (वः + मनांसि) तुम सबके मन (सम् + जानताम्) उत्तम संस्कारों से युक्त हों (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे) पूर्वकालीन (सम् + जानानाः + देवाः) उत्तम ज्ञानी और व्यवहारकुशल लोग (यथा) जिस प्रकार (भागम्) अपने कर्त्तव्य का भाग (उप + आसते) करते आऐं हैं, उसी प्रकार तुम भी अपना कर्त्तव्य करते रहो।

ज्ञानहीन ही बच्चा होता है, मंत्र देने वाला पिता तुल्य होता है। ज्ञानहीन को ही मूर्ख तथा ज्ञानदाता को ही पिता कहा जाता है। आचार्य ब्रह्मस्वरूप हैं पिता प्रजापति का रूप है, माता पृथ्वी समान है, भाई अपनी ही प्रति मूर्ति है।

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो।

ओ३म् संमानो मन्त्रः समितिः संमानी संमानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

ऋ॰ 10।191।3।।

मन्त्रार्थ :– तुम सबका (मन्त्रः) विचार (समानः) एक हो। (समितिः) तुम्हारी कार्यशैली (समानी) सबकी एक जैसी हो। (मनः समानम्) तुम सबका मन एक विचार युक्त हो, (एषाम् + चित्तम् + सह) इन सबका चित्त भी समान उद्देश्य वाले हों, (वः) तुम सबको (समानम् + मन्त्रम्) एक ही समान विचार से (अभि + मन्त्रये) युक्त करता हूँ और (वः) तुम सबको (समानेन + हविषा) एक प्रकार के अन्न और उपभोग (जुहोमि) देता हूँ।

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।

ओ३म् संमानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

ऋ॰ 10।191।4।।

मन्त्रार्थ :– (वः + आकूतिः) तुम सबका ध्येय (समानी) समान हो। (वः + हृदयानि) तुम सबके हृदय (समाना) परस्पर मिलें, (वः + मनः) तुम सबका मन {सोचने का ढंग} (समानम् + अस्तु) एक ही जैसा हो। (यथा) जिससे (वः) तुम सबकी (सह + सु + असति) शक्ति उत्तम हो।

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिन से बढ़े सुख सम्पदा।।

'मन्त्र' अर्थात् विचार।। (स.प्र. 11 समु., उपदेश मंजरी–5वां)

श्रद्ध्या सत्यमाप्यते (मनु. 19.30)
श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

।। इति "मानव की व्यक्तिगत–यात्रा" नामकं पुस्तकमिदं समाप्तम् ।।

इस वसुन्धरा पर धर्म की रक्षा करने हेतु समय–समय पर अनेक महान् आत्माओं ने जन्म लिया और सूक्ष्म से समय में ही अपने कार्यों को पूर्ण कर पुनः महान् आत्माओं के मध्य अन्तरिक्ष में विचरने लगी। इस शृंखला के मनके के रूप में आदि ऋषि ब्रह्मा के शिष्य शृंगी ऋषि की आत्मा ने भी ग्राम खुर्मपुर, जिला गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) में जन्म लिया और आधुनिक काल में एक महान् योगी के रूप में हमारे मध्य में आए।

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज को इस जन्म [illegible]ी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला [illegible] वे पूर्व जन्मों की स्मृति से विशेष योग समाधि में देवया[illegible]र्व लोक की आत्माओं को सम्बोधित प्रवचनों से वेद संहि[illegible] का पाठ और फिर उन मन्त्रों की व्याख्या करते थे। उ[illegible]पूर्व जन्मों में देखी अनेक घटनाओं का विवरण दिया[illegible]से प्राचीन भारतीय इतिहास के कई लुप्त अथवा विकृत [illegible] की बुद्धिसंगत वास्तविकता का पता चलता है।

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के भोग, आत्मा के पुनर्जन्म और अंतःकरण से जन्म–जन्मान्तरों के संचित ज्ञान के स्पष्ट प्रमाण थे। 15 अगस्त 1992 को उन्होंने 50 वर्ष की अवस्था में अपने नश्वर शरीर को त्यागा परन्तु इसकी उद्घोषणा उन्होंने 30 वर्ष पहले 9 मार्च 1962 को कर दी थी। पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के महत्वपूर्ण प्रवचनों को आधार बनाकर इस पुस्तक को लिखा गया है।

आज का मानव–हर क्षेत्र में तनावग्रस्त है, हर पल हानि, हार, अपमान, दुःख, चिन्ता, निराशा की भावनाओं से घिरा हुआ है। ऐसी परिस्थिति में हृदय को छू लेने वाले–ब्रह्मर्षि कृष्णदत्तजी महाराज के अमोघ–अचूक वचन पढ़ने को मिलें; तो निश्चित ही बार–बार पढ़ने से, स्वाध्याय से व्यक्ति के भीतर छुपी हुई आत्मशक्ति, आत्म–चेतना अवश्य ही जागृत हो उठती है। यह तो आत्मा का स्वभाव है कि आत्मा के पास जब परमात्मा के गुण आ जाते हैं तो ज्ञान की अग्नि प्रचंड हो जाती है। व्यक्ति आत्मिक बल व ज्ञान की वृद्धि का अनुभव करे; यही इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है।

जय नारायण कौशिक "जिज्ञासु"
WZ-2B/13, शादीपुर, नई दिल्ली–110008